• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १२ | गौराब्द ४८०, मास—केशव १८, वार—गर्भोदशायी शुक्रवार, ३० अग्रहायण, सम्वत् २०२३, १६ दिसम्बर, | संख्या ६-७

श्रीव्रजविलास-स्तवः

[गतांकसे आगे]

गूढं तत्सुविदग्धताचितसखीद्वारोन्नयन्ती तयो
प्रेम्ना सुष्ठु विदग्धयोरनुदिनं मानाभिसारोत्सवम् ।
राधामाधवयोः सुखामृतरसं यैवोपभुङ्क्ते मुहु-
र्गोष्ठे भव्यविधायिनीं भगवतीं तां पौर्णमासीं भजे ॥२५॥

खर्वश्मश्रुमुदारमुज्ज्वलकुलं गौरं समानं स्फुरत्-
पञ्चाशत्तमवर्ष-वन्दितवयःक्रान्तिं प्रवीणं भजे ।
गोष्ठेशस्य सखायमुन्नततर-श्रीदामतोऽपि प्रिय-
श्रीराधं वृषभानुमुद्भट-यशोव्रातं सदा तं भजे ॥२६॥

अनुदिनमिह मात्रा राधिकाभव्यवार्त्ताः, कलयितुमतियत्नात् प्रेश्यते धात्रिकायाः ।
दुहितृयुगलमुच्चैः प्रेमपूरप्रपञ्चैः,-विकलमति ययाऽसौ कीर्तिदा साऽवतान्नः ॥२७॥

प्रथम-रसविलासे हन्त रोषेण तावत्, प्रकटमिव विरोधं सन्दधानापि भङ्ग्या ।
प्रवलयति सुखं या नव्ययूनोः स्वनप्त्रोः, परमिह मुखरां तां मुष्णि वृद्धां वहामि ॥२८॥

सान्द्रप्रेमरसैः प्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यामाप्ता तयोः-
प्राणप्रेष्ठवयस्ययोरनुदिनं लीलाभिसारं क्रमैः ।
वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षां रसैः-
र्येयं कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मां गणैः ॥२९॥

प्रणय-ललित-नर्मस्फार-भूमिस्तयोर्या, व्रजपुर-नवयुनोर्या च कण्ठान् पिकानाम् ।
नयति परमधस्ताद्दिव्यगानेन तुष्ट्या, प्रथयतु मम दीक्षां हन्त सेयं विशाखा ॥३०॥

प्रति नवनवकुञ्जं प्रेमपूरेण पूर्णा, प्रचुर-सुरभिपूष्पैर्भूषयित्वा क्रमेण ।
प्रणयति बत वृन्दा तत्र लोलोत्सवं या, प्रियगणवृत-राधाकृष्णयोस्तां प्रपद्ये ॥३१॥

सख्येनालं परमरुचिरा नर्मभव्येन राधां, पाकार्थं या व्रजपति-महिष्याज्ञया सन्नयन्ती ।
प्रेम्णा शश्वत् पथि-पथि हरेवार्त्तया तर्पयन्ती, तुष्यत्वेतां परमिह भजे कुन्दपूर्वां लतां ताम् ॥३२॥

व्रजेश्वर्यानीतां बत रसवतीकृत्यविषये,
मुदा कामं नन्दीश्वर गिरिनिकुञ्जे प्रणयिनी ।
छलैः कृष्णं राधां दयितमभि तां सारयति या,
धनिष्ठां तत्प्राणप्रियतरसखीं तां किल भजे ॥३३॥

श्रवन्तीतः कीर्त्तेः श्रवणभरतो मुग्धहृदया,
प्रगाढोत्कण्ठाभिर्व्रजभुवमुरीकृत्य किल या ।
मुदा राधाकृष्णोज्ज्वलरसः-सुखं वर्द्धयति तां,
मुखीं नान्दी-पूर्वां सततमभिवन्दे प्रणयतः ॥३४॥

मुदा राधाकृष्ण-प्रचुर-जलकेली-रसभर-
स्खलत् कस्तूरीतद्घुसृण-घनचर्चाचित-जला ।
प्रमोदाश्रौ फेनस्मितमुदितमुर्मिस्फुटकर-
श्रिया सिञ्चन्तीव प्रथयतु सुखं नस्तरणिजा ॥३५॥

सर्वानन्द कदम्बकेन हरिणा प्राग्याचिता अप्यमूः
स्वैरं चारु रिरंसया रहसि याः क्रोधादनादृत्य ताम् ।
प्राणप्रेष्ठसखीं निजामनुदिनं तेनैव सार्द्धं मुदा,
राधां संरमयन्ति ताः प्रियसखीमूर्ध्ना प्रपद्येतराम् ॥३६॥

(क्रमशः)

अनुवाद—

जो प्रतिदिन निगूढ़ भावसे प्रीतिके साथ विदग्धा सखियोंके द्वारा सुन्दर रूपसे विदग्ध श्रीराधा-माधवका मिलन कराकर तथा दोनोंके मान और अभिसार रूप आनन्दोत्सवको परिपुष्ट कर तदुत्थित सुखरूप अमृत रसका पुनः-पुनः पान करती रहती हैं, गोष्ठकी मङ्गल विधायिनी उन भगवती पौर्णमासीजीका मैं भजन करता हूँ ॥२५॥

जो परम उदार चित्तवाले हैं, जिनका कुल परम उज्ज्वल है, जिनकी छोटी-सी दाढ़ी है, और गौरवर्ण है, जिनकी उम्र पचास वर्षकी है, जो व्रजभरमें अतिशय प्रवीण और संभ्रान्त हैं, जो श्रीनन्द महाराजके परम सहाय हैं तथा जो अपने ज्येष्ठ संतान श्रीदामकी अपेक्षा भी कनिष्ठ पुत्री श्रीराधिकाको अधिक प्यार करते हैं, उन श्रेष्ठ कीर्त्तिवाले श्रीवृषभानुजीका मैं सदैव भजन करता हूँ ॥२६॥

जो प्रतिदिन इस व्रजभूमिमें श्रीमती राधिकाकी कुशल-वार्त्ता जाननेके लिये अतिशय व्यग्र होकर परम यत्न और प्रीतिके साथ धायीकी दोनों कन्याओंको भेजा करती हैं, वे राधाजननी श्रीकीर्त्तिदा देवी मेरी रक्षा करें ॥२७॥

जो इस व्रजधाममें नव्य युवक और नवीन युवती श्रीश्रीराधा-कृष्ण रूप नाती-नतीनी—दोनोंके रस-विलासके विषयमें प्रकट रूपमें मानों रोष दिखाकर विरोध करती हुई भी भाव-भङ्गिमा-द्वारा उन दोनोंका अपार आनन्दवर्द्धन करती हैं, श्रीराधिकाकी उन वृद्धा मातामही मुखराको मैं अपने मस्तक पर वहन करता हूँ ॥२८॥

जो सदा-सर्वदा प्रगाढ़ प्रेम-रसमें पगी रहती हैं, जो अत्यधिक प्रियताके कारण किंचित औधत्य भाव अवलम्बनपूर्वक प्राणप्रिय वयस्यद्वय श्रीराधा-कृष्णकी लीला और अभिसारके विषयमें क्रमशः चातुरी और रसपूर्ण वचनोंके द्वारा अपनी सखी श्रीराधिकाको प्रतिदिन सखीजनोचित मान-शिक्षा प्रदान करती हैं, वे ललिता सखी मुझे अपने गणमें सम्मिलित करें ॥२९॥

जो श्रीश्रीराधा-कृष्ण युगलके प्रणय और सुन्दर कौतुककी पात्री हैं, और जो श्रीश्रीराधाकृष्ण-सम्बन्धीय दिव्यातिदिव्य संगीत द्वारा कोकिल-कंठका भी तिरस्कार करती हैं, अहो ! वे श्रीविशाखाजी अनुग्रहपूर्वक सन्तुष्ट होकर मुझे सङ्गीतकी शिक्षा प्रदान करें ॥३०॥

जो प्रेमरसमें निमग्न होकर क्रम-क्रमसे प्रत्येक नवीन कुञ्जको सुगन्धित पुष्पोंसे भूषित करती हुई प्राणप्रिय सखियोंके द्वारा परिवेष्टित श्रीश्रीराधा

कृष्णके लीलानन्दका विस्तार करती हैं, उन वृन्दा देवीकी मैं सदा-सर्वदा वन्दना करता हूँ ॥३१॥

जो व्रजपतिकी महिषी श्रीमती यशोदाजीके आदेश से पाक-कार्यके लिये श्रीमती राधिकाको प्रतिदिन नन्दालयमें ले आती हैं और श्रीराधाकृष्णका उनके प्रति कौतुकावह सख्यभाव होनेके कारण जो मार्गमें चलते-चलते कृष्ण-चर्चा चला-चला कर श्रीराधिका को परितृप्त करती हैं एवं उनके प्रति अतिशय प्रीति के कारण स्वयं भी परितृप्त होती हैं, उन कुन्दलता का मैं भजन करता हूँ ॥३२॥

पाक-कार्य करनेके लिये व्रजेश्वरी यशोदाजी द्वारा बुलायी गयी श्रीमती राधिकाको जो अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे छल-चातुरी द्वारा नन्दीश्वर पर्वतके निकुंजमें प्रियतम श्रीकृष्णके निकट अभिसार-कार्य में नियुक्त करती हैं, श्रीराधिकाकी प्राणप्रिय सखी उन धनिष्ठाजीका मैं भजन करता हूँ ॥३३॥

जो व्रजधामका यश-श्रवण करनेसे मुग्ध होकर प्रगाढ़ उत्कंठावशतः अवन्ती नगरको छोड़कर इस व्रजधाममें ही वास करती हैं और यहीं रह कर परमानन्दित चित्तसे सदा-सर्वदा राधाकृष्णके शृङ्गार रससुखको परिवर्द्धित करती हैं, उन नान्दी-मुखीकी मैं प्रीतिपूर्वक वन्दना करता हूँ ॥३४॥

परस्पर आनन्दित होकर श्रीश्रीराधाकृष्णका जल-विहार आरम्भ होने पर जल-स्रोतमें उनके अङ्गोंमें लिप्त कुंकुम, कस्तूरी और चन्दन आदि अङ्गरागके पतित होकर व्याप्त होनेसे जिनका जल अत्यन्त सुन्दर-सुवासित हो रहा है और जो अतिशय आनन्दहेतु मानों फेन रूप मन्द-मन्द हास्य करके तरङ्ग रूप भुजाओंसे उन श्रीश्रीराधा-कृष्णका अभिषेक करती हैं, वे तरणि-तनया कालिन्दी मेरी सुख-सम्पत्तिका विस्तार करें ॥३५॥

सर्वानन्द-कदम्ब-स्वरूप श्रीकृष्ण द्वारा निर्जन स्थानमें स्वच्छन्द-विहारकी प्रार्थनाको प्रणयकोप वशतः ठुकरा करके प्राणाधिका निजसखी श्री-राधिकाका प्रतिदिन आनन्दपूर्वक उन्हीं श्रीकृष्णके साथ विहार कराती हैं, उन सब प्रिय सखियोंको मैं अपने मस्तक पर वहन करता हूँ ।

(क्रमशः)

श्रीगौर-भजन

गौरभजन करनेके लिये श्रीगौराङ्गदेवका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। भजन शब्दसे सेवाका ही बोध होता है। सेव्य वस्तुके परिचयके अभावमें अन्य वस्तुकी सेवा हो जाती है। इसलिये वेदोंमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन—इन तीन विषयोंका वर्णन किया गया है।

वस्तुविषयको सम्पूर्णरूपसे जानना ही उस वस्तुके साथ ज्ञाताका सम्बन्ध है। भक्तके भजनमें भगवान ही सम्बन्ध हैं। भगवान, भजन और भक्त—ये तीनों ही सम्बन्ध - ज्ञान युक्त हैं। भोगमय विचारसे तर्कका उदय होता है। जहाँ भक्त अनित्य जड़ नश्वर भोगोंमें प्रमत्त हो, वहाँ सच्चिदानन्द विग्रह श्रीगौरसुन्दरका स्वरूप बद्धजीवोंके नेत्रोंके अगोचर हैं। श्रीगौरसुन्दरको बद्धजीवोंके भोगोपयोगी अन्यतम नश्वर वस्तु जाननेसे गौरसुन्दर को भोग्यज्ञान करना हुआ—जो नितान्त भजन विरोधी विचार है। भजनके नाम पर इन्द्रियतर्पण या नश्वर भोगमयी धारणा शोभा नहीं देती।

अपनेको गौरभक्त कल्पना कर जो व्यक्ति अपने इन्द्रियतर्पणको ही जीवनका सर्वस्व समझते हैं, वे गौरसुन्दरको भजनीय वस्तु जाननेके बदलेमें उन्हें अपने नश्वर रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द गठित वस्तुके रूपमें समझ बैठते हैं। इससे श्रीगौरभजन होना तो दूर रहा, उल्टे अनर्थमय विषयका ही ग्रहण करना होता है। भगवद् वस्तु अधोक्षज हैं।

'अधोक्षज' कहनेसे जड़ेन्द्रिय ज्ञानसे अतीत वस्तुका ही बोध होता है। श्रीजीवगोस्वामीपादने सन्दर्भमें कहा है,—'अधःकृतं अतिक्रान्तं अक्षजं ज्ञानं येन सः अधोक्षजः'। 'अधोक्षज' शब्द प्रयुक्त श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके अभिन्न विग्रह श्रीगौरसुन्दर हमारे भोग्यवस्तु नहीं हैं। गौरसुन्दरका रूप प्राकृत रूप नहीं है। हमारे नश्वर स्थूल इन्द्रियोंके जड़ीय रूप भोग या इन्द्रियतर्पणसे कृष्णविस्मृति ही होती है। श्रीगौरहरिका इतना अपूर्व रूप है कि उसका दर्शन करने पर हमारी भोग-प्रवृत्ति दूर हो जाती है और इन्द्रियतर्पण-पिपासा सदाके लिये मिट जाती है। श्रीगौरसुन्दर साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं। उनमें श्रीरायरामानन्द आदि भक्तोंके सेवनीय वस्तु-विज्ञान की ही स्फूर्ति होती है, नदीया-नागरीकी जड़ भोग-वासना कदापि प्रदीप्त नहीं होती। नागरीगण जड़ भोगमयी धारणाके वशीभूत होकर भोगप्रवृत्ति को पूर्ण करनेके लिये जड़ नागरका अन्वेषण करते हैं। उससे जड़काम क्रमशः वृद्धि पाकर जीवको हरिभजनसे च्युत कर विषय भोगोंमें डूबा देता है। अहैतुक निर्मल प्रेम तिरोहित होकर निजेन्द्रिय प्रीति ही वहाँ प्रबल हो उठती है। हम अपना निःश्रेय (नित्य कल्याण) लाभ करने जाकर मार्गमें रिपुके हाथोंमें पड़कर नित्यकालके लिये नित्यभजन ध्वंस कर कर्मकाण्डमय भोगोंमें फँस गये। श्रीजगद्-गुरुके चरणोंमें पूजाके निमित्त जाकर भोगके गड्ढे में गिर गये! नर्त्तकियोंके नृत्यगीतादि जिस प्रकार

इन्द्रिय - तर्पण द्वारा जीवोंको मंगलमय मार्गसे विच्युत करते हैं, उसी प्रकार श्रीगौरभजनके बदले में नागरी—भोग पिपासा हमें ग्रास कर लेती हैं।

गौरहरि भोगकी वस्तु नहीं, पूजाकी वस्तु हैं। वे कृष्णोन्मुख जीवोंके भजनीय वस्तु हैं। विषय-भोगको भोगनेमें प्रमत्त व्यक्तिगण कामादि षट्रि-पुओंके वशीभूत होकर दृश्यमान भोगमय जगतमें विचरण करते हैं। उसी प्रकार गौरभजनकी छलना करनेसे हमारी जड़ेन्द्रियपरायणता ही बढ़ती है। हम जड़ भोगमें रत हैं। हमारे पति, पत्नी, पुत्र, प्रभु, भृत्य आदि भोगकी वस्तुएँ हैं। श्रीगौराङ्ग-देव उस प्रकारके अनित्य, अज्ञानमय और निरानन्द के आधारमात्र नहीं हैं। नदीया नागरीके भोगोप-योगी वस्तु न होनेके कारण ही उन्होंने अपना स्वरूप प्रकट किया था। हमारे दुर्भाग्यवशतः यदि जड़ भोगकी एक वस्तु समझकर उन्हें नागरके रूपमें खड़ा करें एवं अपनेको भोक्ता रमणी समझ कर नागरी होनेका अभिमान करें, तो उसे भजन न कहकर जड़ेन्द्रियतर्पण कहना ही उचित है। यही हमारी सत्यप्रियता है। वैष्णवधर्मके विपरीत भक्ति हीन जड़ेन्द्रिय भोगप्रवण शक्ति-उपासना अनेक कालसे विद्यमान है। श्रीगौरसुन्दरको केन्द्र कर गौरभक्तिको कलंकित करनेके उद्देश्यसे गौरसुन्दर को जड़ीय रूप, जड़ीयगुण और जड़ीय क्रियामें सज्जित कर क्षणकालके लिये अपनी इन्द्रिय परि-तृप्तिकी कल्पनाको भजन कहकर प्रचार करना क्या हमारे लिये गौरविद्वेष नहीं है ? श्रीगौरसुन्दरका नाम जड़वस्तुकी एक संज्ञामात्र नहीं है, उनका रूप जड़ीय रूप नहीं है, उनके गुण प्राकृत नश्वर गुण-मात्र नहीं हैं और गौरलीला इन्द्रियपरायण व्यक्ति की भजन-छलनामात्र नहीं है।

श्रीगौरहरिका नाम कृष्णचैतन्य है। उनका रूप गौर है, वे स्वयं कृष्ण हैं। नित्य गौररूप होने के कारण वे कृष्णेतर वस्तु नहीं हैं। वे महावदान्य हैं अर्थात् निर्बोध व्यक्तिके प्रति भी असामान्य कृपा-विशिष्ट हैं अर्थात् किसी काले कर्मको (Black Act) की अनित्यता, अज्ञान-निरानन्दरूप अवस्था यदि अवैधरूपसे उनमें आरोप करनेका प्रयास करें, तो उस आवरणसे बद्धजीवको कृपा वितरण द्वारा मुक्त करते हैं। अवैध जड़भोगमें मत्त होकर उन्हें नागर कहना अनुचित है। नागरीभावसे उनके भजन-साधनकी कल्पित चेष्टा कृष्ण भजनका प्रति-कूल पथमात्र है। श्रीगौरसुन्दरने अपने शुद्धभक्त श्रीनित्यानन्द-अद्वैत प्रभु द्वारा, श्रीरूपसनातन आदि छः गोस्वामियों द्वारा, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती द्वारा, श्रीगदाधर, नरहरि आदि प्रेमी भक्तों द्वारा, चौसठ महान्तोंके द्वारा जड़ भोगमिश्र अनर्थमय साधनकालकी भक्तिके अनुष्ठानका सिद्धिकालकी भक्तिके अनुष्ठानके साथ अवैध संमिश्रणका तीव्र विरोध करवाया था। किन्तु हम जैसे अपराधी तर्कनिष्ठ-हृदयविशिष्ट अनर्थमय जीव उन श्रीगौर-सुन्दरको जड़वस्तुविशेष समझकर उन्हें जड़ सम्भोग के मूर्तिमान विग्रह बनाना चाहते हैं। इससे बढ़कर हमारा और क्या गौरविद्वेष हो सकता है ? स्व-र्गीय अक्षयकुमार दत्त, संस्कृत 'भक्तमाल' के लेखक चन्द्रदत्त, साधारण ब्रह्मसमाजके कुछ मन्दबुद्धिवाले समालोचक और ईसाइयोंके पत्र-प्रचारक प्रबन्धा-दियोंमें महाप्रभुजीको केवल मौखिकरूपसे जगदाचार्य

माना गया है। परन्तु वास्तवमें उन्हें जड़-कुभोग राज्यका दुराचार नागर बना दिया है। इस तरह उन लोगोंने श्रीगौरसुन्दरको अवैध प्रचारकमात्र बना दिया है। वास्तवमें क्या श्रीगौरसुन्दरने ऐसी कोई दुष्चरित्रताको अपनी लीलामें प्रकाश किया था जो हम दुःखसाहसके वशीभूत होकर उन्हें अवैध भोग्य नागर बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं ? श्रीगौर-सुन्दरको परस्त्री-प्रेक्षणपर, परस्त्री-चिन्तनपर और अवैध इन्द्रियतर्पणपर नागररूपसे श्रीगौरभक्तोंने कदापि नहीं देखा और न उन्हें ऐसा कुकर्मरत व्यक्तिके रूपमें जानते थे। तब नवद्वीप-नागरीवाद का उद्भावन किसने किया, किस समय यह दुर्नीति धर्म-जगतमें प्रवेश कर गई, और किसनेइस दुर्नीतिको अनर्थमय कालमें धर्मका साधन-भजन कहकर प्रचार करना आरम्भ किया ? 'क्या ठाकुर नरहरिके साथ इस भजन साधन विरोधी अवैध अनुष्ठानका कोई सम्बन्ध है ?'—यह प्रश्न होने पर हम कह सकते हैं कि जिन्होंने ठाकुर कृत 'भजनामृत' देखा है, उनका ऐसा भ्रम हो नहीं सकता। सिद्ध चैतन्यदास ने इस अवैध अनुष्ठानको भजनके रूपमें माना या नहीं, इसका भी कोई प्रमाण पाया नहीं जाता। शुद्ध भक्तोंका कहना है कि कुछ अवैध दुर्नीति सम्पन्न व्यक्तियोंने चैतन्यदासके क्रिया-कलापको न समझ कर उन्हें गायक चैतन्यदास कहनेकी चेष्टा कर अपनी दुर्नीति-पुष्ट चञ्चल प्रतीतिके द्वारा अपनी भ्रान्त धारणासे सत्यानुष्ठानको विकृत बना दिया है। चिड़िया कुञ्जके सिद्ध कृष्णदासके सम्बन्धमें इस नदीया-नागरीभजनको अन्यायपूर्वक आरोप करना सत्यविरुद्ध है। चैतन्यदासके अलौकिक भावको न समझकर हम यदि उन्हें नदीया-नागरीके दौरात्म्य-पूर्ण अवैध साधक श्रेणीभुक्त करें, तो हमने भक्तोंके चरणोंमें अपराधके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया। एक उदाहरणसे इस विषयका अच्छी तरह से समझा जा सकता है। एक बुढ़िया थी। इसका एक मात्र बकरा कहीं खो गया। काफ़ी अनुसंधान करने पर भी वह नहीं मिला। बुढ़िया अत्यन्त दुःखी थी। उन्हीं दिनों एक पण्डितजी रामायण पाठ करते थे। वह बुढ़िया भी एक दिन वहाँ आकर बैठ गयी। पाठ चल रहा था। बुढ़िया पण्डितकी ओर तन्मयतासे देख रही थी। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। श्रोतागण, विशेष कर पण्डितजी बुढ़ियाका भगवत-प्रेम देखकर मुग्ध हो रहे थे। पाठके अन्तमें सब लोगोंके चले जाने पर पण्डितजीने बुढ़ियासे पूछा—'माताजी पाठमें वह कौन सा प्रसंग था जिसे सुनकर आप आनन्दमें विभोर होकर रो-रही थीं।' बुढ़ियाने कहा—'बेटा, मेरा एक बकरा कई दिनोंसे खो गया है। बहुत ढूँढ़ा पर वह कहीं मिला। जब आप तुम लम्बी-दाढ़ी हिला-हिला कर रामायण पाठ कर रहा था उस समय मुझे अपने बकरेकी याद आ रही थी; उसको भी तुम्हारी तरह ही दाढ़ी थी और वह भी तुम्हारी तरह ही दाढ़ी हिलाया करता था। यह कर-कर बुढ़िया और भी रोने लगी।' तात्पर्य यह कि बुढ़ियाका रामायण पाठसे कोई भी सम्बन्ध नहीं था। परन्तु उस समय लोगोंने उसका बाह्य लक्षणोंको देखकर अनुमान लगाया कि वह पाठ श्रवण कर प्रेम से ही रो रही है। ठीक इसी प्रकार से महत् वैष्णवोंके निर्मल चरित्रको हमने समझ

लिया है—ऐसा कहकर अपनी दुर्नीतिको बढ़ावा देते हैं तथा अपनी दुर्बुद्धिताका ही परिचय देते हैं।

जो लोग श्रीगौरसुन्दरके दासोंकी अलौकिक चेष्टाको भी अपनी जड़ भोगमय चेष्टाके समान समझते हैं यदि हम उन्हें निर्बोध समझते तो हम लोग उनको फिर गौरकथाका अनुशीलन करनेके लिए नहीं कहते। वे निर्बोध नहीं हैं, अतएव नदीया नागरी वादका दुर्गन्ध उन्हें जड़ीभूत न कर सकें, एवं वैसा साधन-भजन शुद्ध भक्तिके अनुकूल नहीं है; यह दिखलानेके लिये ही सभा-समिति तथा पत्रिका आदिके द्वारा आलोचनारूप कृष्णानुशीलन की आवश्यकता है। यह परचर्चा नहीं है। यह आचार्य या गुरुसेवा है। इस आचार्यसेवा रहित होने पर बद्धजीव परमार्थ विषयमें निर्बोध हो पड़ते हैं। कुसङ्गके प्रभावसे शुद्धभक्तिसे विच्युत होनेकी कुचेष्टा ही जीवको गौरभक्त होने नहीं देती। श्री गौरहरि महावदान्य होनेके कारण भक्तिविरोधी सिद्धान्तसे कुविषय-भोगमत्त तर्कनिष्ठ भक्तिरहित गौरभक्त-प्रतिष्ठाकामी व्यक्तियोंका उद्धार करनेके लिये समय-समय पर अपने निजजनोंको प्रेरण करते हैं। जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है उस समय भगवान एवं भक्त गण आविर्भूत होकर आचार्यका कार्य करते हैं और जीवोंको दुर्वासना-गठित भजन - छलनासे निर्बोध प्रशिक्षित व्यक्तियों का उद्धार करते हैं।

श्रीदामोदर स्वरूप गोस्वामीने गौड़ीय वैष्णवों के मंगलकी इच्छासे सत्यसिद्धान्त-विरुद्ध और रसाभास-दोषदुष्ट किसी भी कुसिद्धान्तका प्रचार होने नहीं दिया। शुद्ध गौरभक्त उन गौड़ीयाचार्य श्रीदामोदर स्वरूप तथा छः गोस्वामियोंके सिद्धान्तों को अपूर्व ग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृतसे संग्रह कर सकते हैं। शुद्धभक्त श्रील वृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतमें नदीया नागरी मतकी अकर्मण्यता निरूपणार्थ जो सूत्र दिया है, उसकी जो लोग आलोचना नहीं करते, वे शुद्धभक्ति क्या वस्तु हैं, इसका कदापि पता नहीं पा सकते। हरिभजन बद्धजीवोंका मनः कल्पित अनुष्ठानमात्र नहीं है। जो व्यक्ति भगवद्भजन न कर, अन्य जड़ीय धारणाओंकी तुलनामें हरिभजनको भी भोगमय अनुष्ठान समझते हैं, वे ही भक्तियाजनके नाम पर नदीया - नागरीवादको अन्यायपूर्वक भक्तिपथके अन्तर्गत कहकर प्रचार करते हैं।

-जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर-

प्रश्नोत्तर

जीव-तत्त्व

[गताङ्कसे आगे]

५३—चौदह भुवनोंके किस लोकमें किनकी गति होती है ?

"फलकामनायुक्त पुण्यकर्मी गृही व्यक्तियोंके लिए भू, भुवः और स्वः अर्थात् भूलोक, भुवलोक और स्वर्गलोक—ये तीन लोक प्राप्य हैं। उनके ऊपर स्थित महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये चार लोक अगृही अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासियोंद्वारा प्राप्य हैं। निष्काम स्वधर्माचारी गृहस्थ व्यक्ति भी महर्लोकादि लोक-चतुष्टय में गमन करते हैं। सकाम होने पर वे सभी व्यक्ति उस लोकमें भोग कर पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। निष्काम व्यक्ति तत्तत्कर्म-प्राप्य स्थानोंमें भोग कर कर्मक्षयके पश्चात् मुक्त होते हैं। उनमेंसे जो व्यक्ति सम्पूर्ण वैराग्य लाभ कर नहीं पाये, वे महः आदि लोकोंमें कर्मफल भोग कर ब्रह्माके साथ मुक्त होते हैं। महाप्रलयमें ब्रह्मा जब तक मुक्त रहते हैं, तब तक वे भी मुक्त रहते हैं। इसलिए उन सभी की पुनरावृत्ति होती है।"

—बृ० भा० बंगानुवाद

५४—मूलतत्त्वके सिद्धान्त-विषयमें समस्या उपस्थित होने पर क्या-क्या प्रश्न उदित होते हैं ?

"समस्त विषयोंके सिद्धान्त कर लेने पर भी मूलतत्त्वके सम्बन्धमें सिद्धान्त नहीं हुआ, ऐसा सोचने पर इन कतिपय प्रश्नोंका उदय होता है—मैं कौन हूँ ? जगतके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? ईश्वरके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? अंतमें मेरी कहाँ स्थिति होगी ?"

—चै० शि० ८प उपसंहार

५५—जिज्ञासु जीवके तीन मूल प्रश्न क्या हैं ?

"सौभाग्यसे जिस पुरुषको ऐसा विवेक उदित होता है, वह सहसा उन समस्त विषयोंसे निवृत्त होकर जिज्ञासु हो पड़ता है। तब वह निवृत्त-व्यक्ति ज्ञान-साधनके लिए अपने आपको तीन प्रश्न पूछता है—वे तीन प्रश्न हैं—इस जड़ जगतका भोक्ता-स्वरूप मैं कौन हूँ ? यह विपुल विश्व क्या है ? विश्व और मैं, हम दोनोंका यथार्थ सम्बन्ध क्या है ?"

—त० वि० १ म अनु: २

५६—देहधारी मनुष्य किस समय स्वरूपतः वैरागी होते हैं ?

"देहधारी मनुष्यमात्र ही विषयी हैं। सद्गुरु लाभ कर जब वे निर्विषय भाव की इच्छा करते हैं, तब वे क्रमशः हृदय निष्ठाको विषयमुक्त करने की चेष्टा करते हैं। उसमें सफलता मिलने पर स्वरूपतः वैरागी हो पड़ते हैं।"

—'विषय और वैराग्य' स० तो० ४।२

५७—अणुचैतन्य जीव किस समय प्रेमकी बाढ़ उदय करानेमें समर्थ होते हैं ?

"जिस प्रकार अखण्ड अग्निसे अग्नि-स्फुलिङ्ग-समूह उदित होते हैं उसी प्रकार अखण्ड चैतन्य स्वरूप कृष्णसे जीवसमूह निःसृत होते हैं। अग्निका एक-एक विस्फुलिङ्ग जिस प्रकार पूर्ण अग्निकी शक्ति धारणा करता है, वैसे ही प्रत्येक जीव भी चैतन्यके पूर्ण-धर्मकी विकाश-भूमि होनेमें समर्थ हैं। एक विस्फुलिङ्ग जिस प्रकार दाह्य-वस्तु प्राप्त कर क्रमशः वायुकी सहायतासे महाग्नि बनकर जगतको जलानेमें समर्थ होता है, उसी प्रकार एक जीव भी प्रेमके प्रकृत विषयरूप कृष्णचन्द्रको प्राप्त कर प्रेम की महाबाढ़ उदय करनेमें समर्थ है।"

—जै० ध० २ प०

५८—सुकृत और दुष्कृतकी क्या दशा होती है ?

"अन्तर्मुख व्यक्तियोंमें जो अत्यन्त भाग्यवान हैं, वे साधुसंगमें कृष्णनाम प्राप्त करते हैं। जो ऐसे भाग्यवान नहीं हैं, वे कर्मज्ञान मार्गसे अनेक देव-आराधन या निर्विशेष अवस्थाकी आशा करते हैं।"

—'भजन-प्रणाली', ह० चि०

५९—जीवकी बन्धन दशा क्या है ?

"जीवात्मा शुद्धवस्तु है, उसका बन्धन नहीं होता। माया द्वारा मोहित होकर मायासे प्राप्त लिङ्ग-शरीरमें आत्माभिमान ही उसका बन्धन है। इसलिए जीवका बन्धन सत्य नहीं है। जीवका आत्म-विपर्यय अर्थात् स्वरूप-भ्रम केवल अर्थके बिना अर्थ-दर्शन मात्र है या स्वशिरच्छेदनादिकी तरह भ्रम-मात्र है।"

६०—चित्स्वरूप जीवकी जड़ीय वृत्तियाँ किस प्रकार प्रकाशित हुई हैं ?

"चित्स्वरूप जीवका अपने विशेषानुसार 'मैं अमुक लक्षण भगवत्दास हूँ' ऐसा एक शुद्ध अभिमान था। वह अभिमान जीवके चित्गत शुद्ध अहंकाररूप चित्स्वरूपको आश्रय किये था। चित्-स्वरूपको आश्रय कर हिताहित बुद्धि और चित्-स्वरूपको आश्रय कर आनन्दोपलब्धि--स्थानरूप शुद्ध बुद्धि भी थी। अन्य पदार्थ और अन्य जीव एवं परम पुरुष भगवानको विषय जानकर उनका ज्ञान और ध्यानोपयोगी मन भी था। जड़बद्ध होने पर वे चित्गत वृत्तियाँ जड़संगके द्वारा क्रमशः लिङ्ग और स्थूलरूपमें परिणत होने पर तत्तत् विषयरूप जड़ीय और अशुद्ध वृत्तियाँ प्रकाशित हुई हैं।"

—चै० शि० २ ख ७।१

६१—मुक्तजीवकी मुक्तदशा और बद्धजीवकी बद्ध दशामें क्या अन्तर है ?

"शुद्धकृष्णभक्त जीव ही—जो मायाबद्ध नहीं हुए हैं, या जो कृष्णकी कृपासे जगत्से मुक्त हो चुके हैं, वे मुक्तजीव हैं; उन्हींकी दशा मुक्त दशा है। कृष्ण से बहिर्मुख होकर अनादि मायाके कवलमें पड़े हुए जीव बद्धजीव हैं और उन्हीं की दशा संसार-दशा है।"

—जै० ध० ७ वाँ अ०

६२—ब्राह्मण और वैष्णवके श्रेष्ठत्वमें क्या पार्थक्य है ?

"अनुदित-विवेक-मनुष्योंमें ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है।

* * उदित-विवेक-व्यक्तियोंका नामान्तर ही 'वैष्णव' है।"

—जै० ध० ३ य अ०

६३—शुष्कयुक्तिवादीकी जिज्ञासाका स्वरूप और फल क्या है ?

"जिज्ञासु दो प्रकारके होते हैं—एक प्रकारके जिज्ञासु केवल शुष्कयुक्तिका आश्रय कर जिज्ञासा करते हैं। दूसरे प्रकारके जिज्ञासु भक्तिकी सत्ता पर विश्वास कर वस्तु तत्त्वका यथार्थ ज्ञान लाभ करने के लिये जिज्ञासा करते हैं। शुष्क-युक्तिवादी की जिज्ञासाका उत्तर कदापि नहीं देना चाहिए। क्योंकि सत्य-विषयमें उन्हें कदापि विश्वास न होगा उसकी युक्ति मायाबद्ध है, इसलिए अचिन्त्यभावके विषयमें चलच्छक्ति रहित है। अनेक परिश्रम करने पर भी अविचिन्त्य विषयमें वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। परमेश्वरमें विश्वास-परित्याग ही उसका चरम फल है।"

—जै० ध० ३४ वाँ अ०

६४—ज्ञानी—जीवन्मुक्त और भक्त-जीवन्मुक्त में क्या वैशिष्ट्य है ?

'ज्ञान मार्गीय जीवन्मुक्त और भक्तमें बहुत बड़ा भेद है। ज्ञानियोंकी इस देहके प्रति घृणा होती है और देहप्राप्ति न हो इसके लिए चेष्टा होती है। कृष्ण-विरहमें भक्तोंका उस प्रकार देहके प्रति विराग होता है और कृष्ण दर्शनसे देहकी सार्थकता दिखलाई देती है। भोग द्वारा ज्ञानियोंका प्रारब्ध नष्ट होता है; परन्तु भक्तोंका प्रारब्ध कृष्णेच्छाके ऊपर निर्भर है।"

—'प्रयोजन—विचार', श्री भा० मा० १७।२२

६५—क्या मनके द्वारा चिज्जगतका दर्शन होता है ?

"मायाबद्ध जतक्षण, थाके व जीवेर मन,
जड़ माझे करे विचरण।
परव्योम ज्ञानमय, ताहे तव स्थिति हय,
मन नाहि पाय दर्शन।"

"अर्थात् जब तक जीवका मन मायाबद्ध होता है, तब तक वह जड़ वस्तुओंमें विचरण करता है। परन्तु प्रकृतिसे परे परव्योम या चित्जगत् ज्ञानमय है। वहाँ भगवान् की स्थिति है। अतएव जड़ मन चिज्जगत्का दर्शन नहीं कर सकता।"

—'यामुनभावावली' ७।१, गी० मा०

६६-बुद्धिमान कौन है और शोच्य कौन है ?

"जो संसारको जान सकते हैं, वे बुद्धिमान हैं; जो संसारके चक्रमें पड़े हुए हैं, वे ही शोच्य हैं।"

—जै० ध० ७ वाँ अ०

६७—साधुका संसार और मायामुग्धका संसार क्या एक ही हैं ?

"साधुओंके संसार और मायामुग्ध जीवके संसारमें विशेष भेद है। दोनोंके संसार बाहरसे देखनेमें एक ही हैं, परन्तु अन्तरमें यथेष्ट भेद है।"

—जै० ध० ७ म अ०

६८—अर्थी और परमार्थीमें क्या भेद है ?

"अर्थी और परमार्थीमें बाहरी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है, केवल अन्तर्निष्ठाका भेद है।"

—'परमार्थी कौन है ?' स० तो ४।१

६९—एकमात्र भोक्ता कौन है ? जीव क्या भोक्ता नहीं है ?

"जीव कदापि जीवका भोक्ता नहीं हो सकता। सभी जीव भोग्य हैं और कृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं।"

चै० शि० २ य खण्ड ७।७

७०—भक्तिहीन अथच गुणी पुरुषके जीवनका क्या कोई मूल्य नहीं है ?

"कृष्ण भक्तिविहीन सद्गुणसम्पन्न जीवका भी जीवन विफल है।"

—'सद्गुण और भक्ति' स० तो ५।१

७१—मुक्त और बद्ध—दशामें क्या पार्थक्य है ?

"मुक्तावस्थामें हम चित्स्वरूप हैं। बद्धावस्था में चिदचिदाभास स्वरूप हैं। मुक्तावस्थामें हमारे लिए वैकुण्ठरस सेव्य है। और बद्धावस्थामें वहीं हमारे लिए अनुसन्धेय है।"

—प्रे० प्र० ९ वाँ प०

७२—मुक्तावस्थामें 'मैं' और 'मेरा' अभिमान कैसा होता है ?

"मुक्तावस्थामें 'मैं' और 'मेरा' अभिमान सभी चिन्मय और निर्दोष हैं।"

—जै० ध० ७ वाँ अ०

७३—जीवके चिद्देहकी स्फुर्त्ती और सिद्ध—परिचय कैसे पाया जाता है ?

"जीव शुद्ध चित्कण है। जीवका चित्स्वरूप-गत एक सिद्ध चिद्देह है। उस अपने शुद्ध सत्त्व स्वरूपको भूलकर मायाबद्ध कृष्णापराधी जीव जड़ाभिमानसे औपाधिक जड़देहमें मत्त हो जाते हैं। सद्गुरुकी कृपासे अपने स्वरूपको जानने पर स्वीय सिद्ध परिचय प्राप्ति ही परम सहज वस्तु है।"

—'भजन-प्रणाली', ह० चि०

७४—चिद्देहका स्त्रीत्व और पुरुषत्व कैसा होता है ?

"मायिक स्वभावके कारण मनुष्य अपनेको 'पुरुष' समझते हैं। शुद्ध चित्स्वभावमें कृष्णके पुरुष परिकरको छोड़कर सभी जीव ही स्त्री हैं। वस्तुतः चित्गठनमें स्त्री-पुरुष चिह्न न होने पर भी ह्लादिनी शक्तिकी कृपासे स्वभाव और दृढ़ अभिमानके कारण जो कोई व्यक्ति व्रजवासिनी होनेका अधिकार पा सकता है।"

जै० ध० ३२ वाँ अ०

७५—कृष्ण, माया और जीवका क्या उपमा-स्थल है ? जीवका बन्धन क्यों होता है ?

"कृष्ण चिदानन्द रवि, माया तांर छाया छवि,
जीव तांर किरणाणुकण।
तटस्थ—धर्मेर वशे, जीव यदि माया स्पर्शे,
माया तारे करय बन्धन॥"

"कृष्ण चिदानन्द रवि हैं। माया उनकी छाया शक्ति है, जीव किरण परमाणुकण हैं। तटस्थ

धर्मके कारण जीव जब मायाका संस्पर्श करते हैं, तब माया उसे बन्धनमें डालती है।"

७६—जीव और ब्रह्मका भेद नित्यसिद्ध क्यों है ?

"दूधके साथ जल मिलाने पर दूसरे व्यक्ति उसका भेद देख नहीं पाते। किन्तु हंस उपस्थित होने पर उसी समय दूधको पानीसे अलग कर देता है। उसी प्रकार मायावादीकी बुद्धिसे जो सभी जीव प्रलयकालमें परतत्त्व में ब्रह्मके साथ विलीन होते हैं, भक्त सभी गुरुवाक्यका अवलम्बन कर उस जीव और ब्रह्ममें भेद दिखला सकते हैं।"

—त० मु० ८२

७७—जीव और ईश्वरमें एकाकार क्यों नहीं होता ?

'दूधमें दूध मिलानेसे एवं जलमें जल मिलानेसे मिश्रित हो जाते हैं, किन्तु सब प्रकारसे एक नहीं हो जाते। क्योंकि मिले हुए दो वस्तुओंका परिणाम कम नहीं होता। उसी प्रकार ध्यान योगमें जीव समूह परमपुरुषों में विलीन होकर भी एक नहीं बन जाते—ऐसा विमलचित्तवाले पण्डित सभी कहते हैं।"

—त० मु० ८३

७८—जीव क्या ब्रह्म नहीं हो सकता ?

"समुद्र तरंग है, क्योंकि तरंङ्ग समुद्रका अङ्ग है। किन्तु तरंग कदापि समुद्र नहीं है। चितकण जीव ब्रह्मके अंश होने पर भी जीव ब्रह्म नहीं हो सकते।"

—त० मु० १०

७९—भाग्यवान और दुर्भागाका क्या लक्षण है ?

"जेकाले ईश्वर जे कृपा वितरय।
भाग्यवान जन ताहे बड़ सुखी हय॥
दुर्भागा लक्षण एइ जान सर्वजान।
निज बुद्धि बड़ बलि करये गणन॥"

"अर्थात् भाग्यवान व्यक्ति ईश्वरको कृपा लाभ कर परमानन्दित होता है। दुर्भागा व्यक्ति अपने आपको बहुत बुद्धिमान समझता है।"

—न० म० १ म अ०

८०—देहासक्ति क्यों परित्याज्य है ?

"The flesh is not our own alas !
The mortal frame a chain—
The soul confined for former wrongs
Should try to rise again !!

"अर्थात् यह शरीर हमारा नहीं है। और यह मर्त्यशील आवरण एक जंजीर की तरह बन्धन है। जीव अपने पूर्व अपराधोंके कारण इस शरीरमें बन्धनको प्राप्त होता है। इसलिए उसे पुनः उठनेकी चेष्टा करनी चाहिए।"

—'Saragrahi Vaishnava',

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ-१२)

श्रीकृष्ण-रूपकी नित्यस्थितिके सम्बन्धमें भागवतमें कहते हैं—

लोकाभिरामं स्वतनुं धारणा-ध्यानमङ्गलम् ।
योगधारणयाग्नेय्या दग्धवा धामाविशत् स्वकम्॥

योगियोंकी तरह श्रीकृष्णकी स्वच्छन्द मृत्यु निषेध कर रहे हैं। योगियोंकी मृत्यु उनके इच्छाधीन है। वे आग्नेयी योगधारणा द्वारा अपने देह को दग्ध कर लोकान्तरमें प्रवेश करते हैं। किन्तु भगवान वैसा नहीं करते। वे दग्ध न कर अपने शरीरके साथ ही वैकुण्ठधाममें प्रवेश करते हैं। क्योंकि भगवान सभी लोकोंके अभिराम हैं अर्थात् भगवानके शरीरमें सभी लोकोंकी स्थिति है। इस लिए वे जगतका आश्रय होनेके कारण उनके दग्ध होनेपर समस्त जगतका दाह हो जावेगा। श्रीकृष्ण-रूप ही धारण-ध्यानका मङ्गल अर्थात् उन रूपके ध्यान - धारणासे मंगल प्राप्त होता है। रूपकी नित्यता न होनेसे ध्यान-धारणादि संभव नहीं है। साक्षात् मन्मथमन्मथ सर्वचित्ताकर्षक श्रीकृष्ण-रूप न रहनेसे किस चिन्ताकी धारणा करेंगे ? अर्थात् उसमें भी बाधा होती है। भगवान श्रीकृष्णके रूप का दर्शन करने पर—

भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥

ईश्वरका साक्षात्कार करनेसे हृदय ग्रन्थिका भेदन हो जाता है, सर्वसंशय छेदन हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

मनोहर रूप-गुणविशिष्ट वस्तुमें मन स्वाभाविक रूपसे आकृष्ट होता है। श्रीकृष्णमें रूपगुणका चरम उत्कर्ष है। श्रीकृष्ण रूपमें सर्वाकर्षण-सामर्थ्य है।

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्चानन्द-स्वरूपकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।

'कृषि' सत्तावाचक है और 'ण' आनन्दवाचक है। दोनोंके ऐक्यमें परंब्रह्म कृष्णका ही बोध होता है। आनन्दद्वारा आकर्षण करना ही श्रीकृष्णका स्वभाव है। इसलिये यदि एकबार उनमें चित्त स्थापित हो जाय, तो वहाँ से चित्तवृत्ति अन्यत्र आकृष्ट नहीं होती। इसीलिए धारणा-ध्यान मङ्गल कहा गया है। अतएव मायावादियोंके मतानुसार श्रीकृष्णरूपकी अनित्यताका खण्डन होता है।

समस्त अवतारोंके नित्य प्राकट्यके बारेमें ५ म स्कन्ध, १७ वाँ अध्याय, १५ वें श्लोकमें कहा गया है—

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषःपुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि सन्निधीयते ।

जम्बुद्वीप नौ वर्षोंमें विभक्त है—अजनाभ, किंपुरुष, हरि, इलावृत, रम्यक्, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व, और

केतुमाल। इन नौ वर्षोंमें महापुरुष भगवान नारायण जीवोंके प्रति अनुग्रह करनेके लिए आत्मतत्त्वव्यूहमें साक्षात् अपनी सभी मूर्तियों द्वारा सन्निहित रहते हैं। यह सन्निधान साक्षात् रूपसे है, प्रतिमादिरूपसे नहीं। इन सभी वर्षोंमें साक्षात्रूपसे ही वे सभी विराजमान हैं। उक्त पञ्चमस्कन्धोक्त श्लोककी तरह विष्णु धर्मोत्तरके श्रीकृष्ण सहस्रनाममें ऐसा ही नित्यत्व वर्णित है—

तस्य हृष्टाशया स्तुत्या विष्णुर्गोपाङ्गनावृतः।
तापिञ्छश्यामलं रूपं पिञ्छोत्तं समदर्शयत्॥

उनकी स्तुतिसे आनन्दित होकर गोपाङ्गनावृत श्रीकृष्णचन्द्र शिखिपुच्छ चूडालंकृत तमालश्यामल-रूपका सम्यक् दर्शन कराया था। इस श्लोकके आगे गया है—

मामवेहि महाभाग कृष्णं कृत्यविद्याम्बर।
पुरस्कृतोऽस्मि त्वद्भक्त्या पूर्णाः सन्तु मनोरथाः।

—हे महाभाग! कर्त्तव्याभिज्ञश्रेष्ठ! मैं कृष्ण हूँ, तुम मुझे जानो। मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ हूँ। तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण हों।

पाद्म-पुराणमें ब्रह्माजी के वचन—

ततोऽपश्यमहं भूप बालं कालाम्बुदप्रभं।
गोपकन्यावृतं गोपं हसन्तं गोपबालकैः॥
कदम्बमूल आसीनं पीतवास - समुद्भुतम्।
वनं वृन्दावनं नाम नवपल्लव मण्डितम्॥

हे भूप! उसके पश्चात् मैंने कालमेघकी तरह प्रभाविशिष्ट अद्भुत बालकको देखा। वे पीत वस्त्र पहने हुए गोपवेशधारी कदम्बमूलमें उपविष्ट, गोप-कन्यावृत, गोपबालकोंके साथ हास्यपरायण और वृन्दावन नामक वनमें विराजित हैं।

त्रैलोक्य सम्मोहनतन्त्रमें अष्टादशाक्षरमन्त्र जप प्रसङ्गमें—

अहर्निशं जपेद् यस्तु मन्त्री निवृत मानसः।
स पश्यति न सन्देहो गोपवेशधरं हरिम्॥

अष्टादशाक्षर मन्त्रद्वारा दीक्षित व्यक्ति संयत-चित्तसे दिवानिशि मन्त्र जप करने पर गोपवेशधारी श्रीकृष्णका अवश्य ही दर्शन करते हैं।

सनकादिके निकट ब्रह्माजीकी उक्ति—तदुहोवाच ब्रह्मणोऽसावनवरतं मे ध्यातः स्तुतः परार्द्धान्ते सोऽबुध्यत गोपवेशो मे पुरस्तादाविर्बभूव इति। सनकादि मुनियों द्वारा पञ्चपदात्मक मन्त्रके स्वरूप जिज्ञासा करने पर ब्रह्माजीने कहा—हे पुत्रों! मैं तुम्हारे सामने जो खड़ा हूँ, पहले परार्द्धकाल मेरे द्वारा ध्यान और स्तव करने पर श्रीगोपालने मेरी बातकी ओर ध्यान दिया था। वे ही गोपवेशधर पुरुष परार्द्धान्तमें मेरे सामने आविर्भूत हुए हैं।

इन सभी वचनोंसे साधनके द्वारा सब समय श्रीकृष्णके आविर्भावकी बात जानी जाती है। इसके उनकी नित्यस्थिति प्रमाणित होती है।

बोधायन स्मृतिमें कहा गया है—

गोविन्द गोपीजनवल्लभेशविध्वस्तकंस त्रिदशेशवन्द्य।
गोवर्द्धनाद्रि-प्रवरैक हस्त-संरक्षिताशेषगव प्रवीण।
गो-वेत्र-वेणुक्षपण प्रभूतमान्ध्यंतथाग्रं तिमिरं क्षिपाशु।

हे गोविन्द ! हे गोपीजनवल्लभ ! हे ईश ! हे विध्वस्त कंस ! हे त्रिदशेशवन्दय (देवता श्रेष्ठगणों के प्रणम्य) हे गोवर्द्धन पर्वत प्रवरेकहस्त अर्थात् एकहस्तमें पर्वतधारि ! हे कंस रक्षिताशेष गवप्रवीण ! हे गो-वेत्र-वेणुक्षपण ! आप प्रचुर अन्धता और उग्रतिमिर रोगका शीघ्र ही नाश करें।

एकमात्र चित्शक्ति द्वारा अभिव्यक्त श्रीभगवत्-परिच्छदादिकी भी श्रीभगवत्-स्वरूपकी तरह नित्य-स्थिति है और उसके लिए तत्समूहका आविर्भाव-तिरोभाव होता है। वे सभी सर्वथा उत्पत्ति-विनाश रहित हैं। द्वितीय सन्दर्भमें यह सिद्धान्तित हुआ है।

श्रीकृष्णरूपकी नित्यस्थिति यदि निश्चित है, तब जन्मलीला विस्तारका हेतु क्या है ? उसका उत्तर—'जगृहे पौरुषं रूपं' श्लोककी व्याख्यामें श्रीमन्मध्वाचार्यका अर्थ—लोकमें अभिव्यक्तिकी अपेक्षासे रूपग्रहण। तत्कृत तंत्र-भागवतमें भी कहा गया है—जो रूप अहेय, उपादेय, नित्य और अव्यय है, वही सभी रूपोंका आश्रय है। भगवान ईश्वरका राम-कृष्णादिरूप जो शरीरका ग्रहण और विसर्जन के बारे कहा गया है, वह केवल मूढ़बुद्धि लोगोंके लिए कहा गया है।

योगमायाके आवरण प्रभावसे गुप्तरूपसे स्थित भगवान जब उस आवरणको दूर करनेकी इच्छा करते हैं, तब राम-कृष्णादिरूप लोगोंके निकट प्रकट करते हैं। रूपके इस प्रकटनको 'ग्रहण' कहा जाता है। वह लोकलोचनसे दूर स्थित रूपका लोगोंके सामने प्रकाश मात्र है, सृष्टि नहीं है।

श्रीकृष्णकी विभुता, सर्वव्यापकता प्रदर्शन कर सिद्धान्त दृढ़ किया गया है—

विधूय तमसेयात्मा भगवान् धर्मगुब्विभुः।
मिषतो दशमासस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः॥
(भा. १।१२।११)

उत्तराके गर्भमें ब्रह्मास्त्र-तेजसे परीक्षित्की रक्षा करनेके लिए कृष्ण आविर्भूत होकर भक्तवात्सल्य रूप धर्मके रक्षक और सर्वगत वे भगवान दस मास वयस्क परीक्षितके सामने ही अन्तर्द्धान हुए। जहाँ परीक्षित्जीने उन्हें देखा था, वे वहीं अन्तर्हित हुए, क्योंकि वे विभु और सर्वगत हैं। इसलिए आविर्भाव के लिये अन्यस्थानसे आना या तिरोभाव के लिए अन्यत्र जाना नहीं पड़ता।

मध्वभाष्य धृत श्रुतिमें कहा गया है—

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नोऽनिरुद्धोऽहं मत्स्यः कूर्मो वराहो नरसिंहो वामनो रामो रामो रामः कृष्णो बुद्धो कल्किरहं शतधाहं सहस्रधाहममितोऽहमनन्तः। नैवैते जायन्ते नैते म्रियन्ते नैषामज्ञानबन्धो न मुक्तिः सर्व एव ह्येते पूर्णा अजरा अमृताः परमाः परमानन्दा इति चतुर्वेदशिखायाम्।

मैं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि—मैं सैकड़ों तथा सहस्रों प्रकार से आविर्भूत होता हूँ। इन सभी रूपोंकी वृद्धि नहीं है, जन्म या मृत्यु नहीं है, अज्ञानबन्ध नहीं है, मुक्ति भी नहीं है। ये सभी पूर्ण, अजर, अमर, अमृत, परम और परमानन्दस्वरूप हैं।

ब्रह्मपुराणके पाद्मोत्तर खण्डमें मत्स्यादि अवतारोंकी पृथक्-पृथक् वैकुण्ठमें अवस्थितिकी बात जानी जाती है । "जनेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्त्ति" इस उक्तिके द्वारा उनकी नित्यता ही प्रमाणित होती है। भागवतमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

(१२।११।२५)

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्-
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्त्तिहरावतार योगेश्वरा-
खिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥

हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसख ! हे वृष्णिवंशश्रेष्ठ ! हे पृथिवीके विघ्नकारी राजन्यवंशके नाशक ! हे अक्षीणवीर्य ! हे गोविन्द ! सभी गोप-वनिताएँ एवं नारदादि मुनिगण तुम्हारे पवित्र यशका गान करते हैं। तुम्हारे नाम श्रवण करनेसे मंगल होता है। तुम अपने सेवकोंकी रक्षा करते हो।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

जैवधर्मकी प्रस्तावना

[श्रीश्रील भक्ति विनोद ठाकुर द्वारा बंगलाभाषामें रचित प्रसिद्ध धर्म-ग्रन्थ 'जैवधर्मके' हिन्दी संस्करणमें ॐविष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा लिखित प्रस्तावना ।]

पृथ्वीतलपर बहुतसे धर्म सम्प्रदाय प्रचलित हैं। उनमेंसे अधिकांश सम्प्रदायोंमें ही तत्तद्धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे विविध-प्रकारकी प्रणालियोंका अवलम्बन कर विभिन्न भाषाओंमें अनेकानेक ग्रन्थ लिपिबद्ध हुए हैं । जिस प्रकार लौकिक-शिक्षामें कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम या तर-तम अथवा ऊँच-नीच आदि विविध प्रकारके तारतम्य स्वतःसिद्ध हैं, उसी प्रकार विभिन्न धर्म - सम्प्रदायोंकी धर्म-शिक्षाओंमें भी विभिन्न प्रकारके तारतम्य सर्ववादी-सम्मत एवं स्वतःसिद्ध हैं। इनमेंसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेम-धर्मकी शिक्षा सभी दृष्टियोंसे सर्वोत्तम है—इसे विश्वके सभी निरपेक्ष मनीषिवृन्द एक स्वरसे स्वीकार करेंगे । सर्वोत्तम आदर्श और शिक्षासे अनुप्राणित होनेकी आकांक्षा सबमें ही परिलक्षित होती है। उन लोगोंकी यह शुभेच्छा कैसे फलवती हो,—इसका विचार करके ही परममुक्त पुरुष तथा धर्म जगतके प्रधान आदर्श, शिक्षितकुल-चूड़ामणि श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने विभिन्न भाषाओंमें अनेकानेक धर्म-ग्रन्थोंका सृजन किया है। इन ग्रन्थोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाओंका बड़ी सरल-सहज भाषामें साङ्गोपाङ्ग वर्णन उपलब्ध होता है। लेखककी सम्पूर्ण ग्रन्थराशिमें इस 'जैवधर्म' ग्रन्थको ही विभिन्न देशीय धार्मिक मनीषियोंने सर्वोत्तम माना है।

विश्वमें वेद ही सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। तदनुगत उपनिषद्-समूह एवं श्रीवेदव्यासद्वारा प्रकटित वेदान्त-सूत्र, महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि आदर्श-ग्रन्थ हैं। आगे चलकर इसी आदर्शसे अनुप्राणित होकर भारतवर्षमें अनेक प्रकरण-ग्रन्थ लिखे गये, जिनका स्थान-स्थानपर प्रचुर प्रचार और आदर है। इन प्रकरण-ग्रन्थोंमें तारतम्य, वैशिष्ट्य और भेद आदिकी तो बात ही क्या, परस्पर सामञ्जस्य-रहित विभिन्न प्रकारके मतभेद और काल्पनिक विचार-धाराएँ भी परिलक्षित होती हैं। फल-स्वरूप धर्म-जगतमें नाना-प्रकारके उथल-पुथल और उपद्रव हुए हैं और हो रहे हैं। ऐसी विकट परिस्थितिमें स्वयं-भगवान परतत्त्वके रूपमें जीवमात्रका उद्धार करनेके लिये सप्ततीर्थोंमें प्रधान मायातीर्थ—मायापुर (श्रीधाम नवद्वीप) में आविर्भूत होकर अपने प्रिय पार्षदजनोंद्वारा सम्पूर्ण शास्त्रों का यथार्थ तात्पर्यमूल सार सङ्कलन करवाकर लगभग ४५०-५०० वर्ष पूर्व सबके हृदयमें दिव्यज्ञान-मूला भक्तिका उन्मेष कराया था। उनमेंसे तीन-चारको छोड़कर अधिकांश ग्रन्थ ही संस्कृत भाषामें लिपिबद्ध हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षदोत्तम श्रीश्रीरूप-सनातनके प्रियतम अभिन्न-विग्रह श्रील जीव गोस्वामीने समस्त शास्त्रोंका सार संकलन कर देव-भाषामें षट्सन्दर्भ ग्रन्थोंकी रचना की है और उनके माध्यमसे स्वयं-भगवानकी जीवोद्धार-लीलाकी निगूढ़तम इच्छाको व्यक्त किया है। कुछ लोग शास्त्रों का यथार्थ तात्पर्य अनुधावन नहीं कर पा सकनेके कारण उनके आंशिक या कलामात्र, यहाँ तककी छाया या विरुद्ध भावको ही ग्रहण करनेके लिए बाध्य हुए हैं। श्रीजीव गोस्वामीकी लेखनी-प्रसूत शिक्षा ही श्रीमन्महाप्रभुकी ऐकान्तिक शिक्षा है, वेद-उपनिषद्, महाभारत और श्रीमद्भागवतकी शिक्षा है। इसी शिक्षाके सर्वथा निर्दोष और पूर्णतम भावका अवलम्बन करके यह 'जैव-धर्म' ग्रन्थ अत्यन्त आश्चर्य रूपसे ग्रथित हुआ है। नीचे 'जैवधर्म-नामकरणके तात्पर्यकी विवेचना की जा रही है, जिससे पाठकगण इस ग्रन्थकी उपादेयता और गुरुत्व का सहज ही अनुधावन कर सकेंगे।

ग्रन्थकारने इस ग्रन्थका नामकरण किया है—'जैवधर्म'। धर्मके सम्बन्धमें हम सबने कुछ न कुछ एक धारणा बना रखी है। इसलिये यहाँ स्थानाभावके कारण इस विषयमें कुछ अधिक कहना अनावश्यक समझता हूँ। संस्कृत भाषामें 'जीव' शब्दमें 'ष्ण' प्रत्यय लगाकर 'जैव' शब्द निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है—'जीवका' अथवा 'जीव-सम्बन्धीय'। अतएव 'जैव धर्म' कहनेसे 'जीवमात्र का धर्म' अथवा 'जीव-सम्बन्धीय धर्मका बोध होता है। यहाँ 'जीव' किसे कहते हैं ?—इस प्रश्नका उत्तर स्वयं ग्रन्थकारने ही इसी ग्रन्थमें विस्तृत विवेचनपूर्वक प्रदान किया है। संक्षेपमें दो-एक बातें यहाँ निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ।

'जीव'-शब्दसे जीवन है जिसको, वही जीव है अर्थात् प्राणीमात्र ही जीव हैं। अतएव जैवधर्मसे ग्रन्थकारने जीवमात्र या प्राणीमात्रके धर्मको ही लक्ष्य किया है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने अपने एकान्त अनुगत निजजन श्रीरूप-सनातन और जीव आदि छः गोस्वामियोंके द्वारा प्राणीमात्र या जीव-मात्रके लिए कौन-सा धर्म ग्रहणीय और पालनीय

है--इस विषयमें शिक्षा दी है। तदनन्तर लगभग ४०० वर्षोंके पश्चात् श्रीश्रीगौरजन्मस्थान श्रीधाम मायापुरके समीप ही इस ग्रन्थके लेखक सप्तम गोस्वामी श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने आविर्भूत होकर, जीवोंके प्रति दयार्द्र-चित्त होकर बंगला भाषामें 'जैवधर्म' की रचना की है।

भगवानकी इच्छासे भगवानके निजजन श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृत-ग्रन्थमें भगवान श्रीगौरचन्द्रकी शिक्षाका सार निम्नलिखित पयारमें व्यक्त किया है—

'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदा-भेद प्रकाश॥"

(मध्य २०।१०८)

ग्रन्थकारने गौड़ीय वैष्णवोंकी सम्पूर्ण शिक्षाके बीजमन्त्र-स्वरूप उक्त मन्त्रके आधार पर ही 'जैवधर्म' की रचना की है। अतएव यह ग्रन्थ जाति, वर्ण, आश्रम और देश-काल-पात्र आदि भेदोंसे परे मानवमात्रके लिए ही नहीं, अपितु मनुष्येतर कुलोद्भूत प्रस्तर, पशु, पक्षी, कीट पतंग और जलचर आदि स्थावर और जङ्गम योनियोंको प्राप्त प्राणी मात्रके लिए ही हितकर और ग्रहणीय है। मनुष्येतर प्राणियोंमें जैवधर्म ग्रहणके उदाहरण स्वरूप अहिल्या (पाषाणी), यमलार्जुन (वृक्ष), सप्ततल (वृक्ष), नृगराज (गिरगिट), भरत (मृग), सुरभि (गाय), गजेन्द्र (हाथी), जामवन्त (रीछ) अंगद-सुग्रीव (बन्दर) आदिके नाम उल्लेख योग्य हैं। जगद्गुरु ब्रह्माजीने स्वयं भगवान कृष्णसे तृण, गुल्म, पशु, पक्षी आदि किसी भी योनिमें जन्म देकर तदीय चरणकमलोंकी सेवा याचना की है—

'तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥"

(श्रीमद्भा. १०।१४।३०)

भक्तराज प्रह्लाद महाराजने और भी स्पष्टरूपसे पशु आदि सहस्रों योनियोंमें जन्म ग्रहण करके भी भगवद्दास्यरूप जैवधर्म - प्राप्तिकी लालसा व्यक्त की है—

"नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥'

और स्वयं ग्रन्थकारने भी स्वरचित 'शरणागति' ग्रन्थमें ऐसी ही प्रार्थना की है—

'कीट जन्म हउ यथा तुया दास।
बहिर्मुख ब्रह्मजन्मे नाहि आश॥'

अतएव 'जैवधर्म' की शिक्षा प्राणीमात्रके लिए आदरणीय और ग्रहणीय है। इस शिक्षाको सर्वान्तःकरण द्वारा अपनानेसे प्राणीमात्र अति सहज ही माया-मोहके कठोर निगड़की घोर यन्त्रणासे—तुच्छ अलीक आनन्दकी मृग-मरीचिकासे सदाके लिए छुटकारा प्राप्त कर भगवत् सेवानन्दमें निमग्न होकर परमशान्ति और परानन्दको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

पूर्व प्रदर्शित शिक्षाके ऊँच-नीच तारतम्यकी भाँति धर्मतत्त्वमें भी ऊँच-नीच आदिका तारतम्य स्वीकृत है। उन्नत शिक्षाका आदर्श उन्नत अधिकारी ही ग्रहण कर सकता है। तात्पर्य यह कि समस्त प्रकारके प्राणियोंमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्येतर प्राणी भी अनेक प्रकारके हैं। प्राणी या जीव कहनेसे चेतन पदार्थका ही बोध होता है। यहाँ अचेतन या जड़ पदार्थोंका विषय आलोच्य नहीं है। चेतनकी स्वाभाविक वृत्ति या क्रिया को धर्म कहते हैं। वह धर्म वास्तवमें चेतनकी वृत्ति या उसके स्वरूपगत स्वभावको ही लक्ष्य करता है। धर्मकी वाणी कहनेसे चेतन की वाणीका ही बोध होता है। इस ग्रन्थके सोलहवें अध्यायमें चेतनके तारतम्यमूलक क्रम-विकाशका विज्ञान-संगत सूक्ष्म विवेचन है। चेतन अर्थात् मायाबद्ध जीवोंकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं—(१) आच्छादित चेतन, (२) संकुचित चेतन, (३) मुकुलित चेतन, (४) विकसित चेतन और (५) पूर्ण-विकसित चेतन। ऐसे चेतन ही जीव या प्राणी कहलाते हैं। जीवोंकी ये पाँच श्रेणियाँ पुनः स्थावर और जङ्गम भेदसे दो भागों विभक्त हैं। इनमेंसे वृक्ष, लता, गुल्म और प्रस्तर आदि स्थावर प्राणियोंको आच्छादित चेतन कहते हैं। इस आच्छादित चेतनको छोड़कर अन्य चार प्रकारके चेतनसमूहको जंगम (चलनेवाले) प्राणी कहते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग एवं जलचर प्राणीसमूह संकुचित चेतन हैं। आच्छादित और संकुचित चेतन इन दो श्रेणियोंमें मनुष्येतर कुलोत्पन्न जीव होते हैं। मुकुलित, विकसित और पूर्ण विकसित चेतन–इन तीनों ही श्रेणियोंमें मनुष्य शरीरवाले जीवसमूह आते हैं। अतएव इन तीनों श्रेणियोंमें अवस्थित चेतन, आकारकी दृष्टिसे मानव होने पर भी चेतनताके क्रम-विकासकी दृष्टिसे इनमें तारतम्य है इसी तारतम्य-विचारको ध्यानमें रखकर ही उनमें कनिष्ठ, मध्यम, और उत्तमका विचार होता है। फिर भी वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और मनुष्य ये सभी जीव ही हैं और इन सबका ही एकमात्र धर्म भगवदुपासना ही है। परन्तु इन सबमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और भगवदुपासनारूप जैवधर्म उसीका विशेषधर्म है।

ज्ञान या बोधके आच्छादनके तारतम्यानुसार चेतन वृत्तिका तारतम्य हुआ करता है। मानव ही सर्वप्रकारके प्राणियोंमें श्रेष्ठ है—इस विषयमें कोई भी संदेह नहीं है। यह श्रेष्ठत्व कहाँ और क्यों है—इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। वृक्ष, लता, कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी और जलचर प्राणियों से आकार-विकार, बल-वीर्य, सौन्दर्य एवं रूप-लावण्य आदिकी दृष्टिसे मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु मनोवृत्ति एवं बुद्धिके विकाश अथवा चैतन्य वृत्तिके अधिक विकाश की दृष्टिसे ही मानव अन्यान्य प्राणियोंसे सर्वतोभावेन श्रेष्ठ है। अतएव 'जैवधर्म' में इसी श्रेष्ठ धर्मका विवेचन किया गया है। साधारणतः जीवमात्रका धर्म होने पर भी इसे मानव-जातिका ही धर्म समझना चाहिए। क्योंकि श्रेष्ठ धर्ममें श्रेष्ठ-जीवका ही विशेषरूपसे अधिकार होता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ग्रन्थका नाम 'जैवधर्म' न रखकर मानव-धर्म या मनुष्यमात्रका

धर्म ही क्यों नहीं रखा गया ?' इसका कारण अनुसंधान करने पर यह ज्ञात होता है कि धर्ममात्रमें मनुष्यकी वृत्ति होती है। मनुष्येतर प्राणियोंमें धर्म नहीं होता—यही साधारण विधि है। वृक्ष, लता, प्रस्तर, कृमि, कीट, पतंग, मत्स्य, कच्छप, पशु-पक्षी और साँप आदि जीवके अन्तर्भूत होने पर भी इनमें मोक्ष या भगवदुपासनासूचक धर्मवृत्ति परिलक्षित नहीं होती।

कतिपय दार्शनिकोंका यह मत है कि जिन प्राणियोंमें केवलमात्र पशुत्व अर्थात् मूर्खता और निष्ठुरता (Animality) होती है, वे ही पशु हैं। इस पशु श्रेणीके कतिपय जीवोंमें जो जन्मगत स्वाभाविक या सहज-ज्ञानवृत्ति (Intuition) परिलक्षित होती है, वह कुछ हद तक मानव-वृत्ति का आभासमात्र है। वास्तवमें वह मानव-वृत्ति नहीं। इस पशुत्व (Animality) के साथ ज्ञान या विवेक-बुद्धि (Rationality) युक्त होने पर ही उसे मानवता और जिनमें यह मानवता हो, उन्हें मानव या मनुष्य कहते हैं। पाश्चात्य दार्शनिकोंने भी कहा है—'Men are rational beings'। हमारे आर्य ऋषियोंने उक्त पशुवृत्ति (Animality) से संक्षेपतः आहार, निद्रा, भय और मैथुन—इन चार वृत्तियोंको लक्ष्य किया है। इस पशुवृत्तिको अतिक्रम कर धर्मवृत्ति (Rationality) से युक्त होने पर ही मनुष्यत्व प्रमाणित होता है। परन्तु यहाँ यह विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है कि पाश्चात्य दर्शनमें (Rationality) का अर्थ अति संकुचित है और हमारे आर्य दर्शनका 'धर्म' शब्द बहुत ही व्यापक है, जो पाश्चात्य दर्शनके (Rationality) को अपने एकांशमें अन्तर्भूत कर उससे भी बहुत उन्नत ईशोपासना-वृत्ति तकको धारणा करता है। यह धर्म ही मनुष्यत्वका यथार्थ परिचायक है। धर्महीन प्राणियोंको 'पशु' की संज्ञा दी गयी है। शास्त्र कहते हैं—

> आहार निद्रा भय मैथुनञ्च,
> सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणां।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
> धर्मेण हीना पशुभिः समाना ॥

तात्पर्य यह कि आहार, निद्रा, भय और मैथुनरूप इन्द्रियतर्पणादि प्राणी या जीवमात्रकी स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं। मनुष्य और मनुष्येतर सब प्रकार के जीवोंमें ही ये वृत्तियाँ समानरूपमें परिलक्षित होती हैं—इसमें दो मत नहीं। परन्तु मनुष्यको मनुष्य तभी कहा जायगा, जब कि उसमें धर्मवृत्ति देखी जाय। 'धर्मो हि तेषां अधिको विशेषो' अर्थात् पशु आदिकी अपेक्षा मनुष्यमें धर्म ही विशेष या अधिक होता है। जिसमें धर्मका नितान्त अभाव होता है, वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। 'धर्मेण हीना पशुभिः समाना।' धर्महीन व्यक्ति पशु-सदृश है। इसलिए हमारे देशमें धर्महीन मनुष्यको नरपशु कहा गया है।

अस्तु यह विशेषरूपसे विचारणीय है कि आजकल लोग धर्मका परित्याग करके केवल आहार-विहार आदि विषय-भोगोंमें प्रमत्त रहते हैं, उनकी यह वृत्ति—पशुवृत्ति या मनुष्येतर-वृत्ति है। कलिके प्रभावसे आजकल मनुष्य निम्नगामी होकर क्रमशः

पशुत्वकी ओर अग्रसर हो रहा है। इसीलिए ग्रन्थकारने सबकी हित-कामनासे ही ग्रन्थका नाम 'जैवधर्म' रखकर शास्त्र-मर्यादाको सम्पूर्णरूपसे अक्षुण्ण रखा है। मनुष्यमें ही ईश्वर उपासना रूप धर्म परिलक्षित होता है, पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर प्राणियों में नहीं। अतएव मनुष्य सर्वोच्च प्राणी है और वही सर्वोच्च या धर्मका विशेष अधिकारी है। जैवधर्म उन्हींके लिए पठनीय है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी विशेषता यह है कि उन्होंने सर्वनिम्नतम व्यक्तिको भी कृपा करके अपनी उच्चतम शिक्षामें अधिकार प्रदान किया है। यह किसी भी दूसरे अवतार नहीं दिया गया है। इसीलिए शास्त्रकारोंने श्रीमन्महाप्रभुका बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें स्तवन किया है—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल-रसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥
(विदग्धमाधव १।२)

अर्थात् जो सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वल-रस जगतको कभी भी दान नहीं किया गया, जिससे जीवमात्र अत्यन्त सहज और सरलरूपसे मायामोहके बन्धनसे सदाके लिए मुक्त होकर कृष्णप्रेम प्राप्त कर धन्य हो सके, उसी स्वभक्ति-सम्पत्तिका दान करनेके लिए करुणावशतः सुवर्ण-कान्तिद्वारा देदीप्यमान स्वयं भगवान श्रीशचीनन्दन गौरहरि कलिकालमें अवतीर्ण हुए हैं। लेखकने भी श्रीमन्महाप्रभुके उक्त वैशिष्ट्यकी सर्वतोभाविन रक्षा की है।

'वैष्णवधर्ममें मनुष्यमात्रका अधिकार है'—ग्रन्थकारने 'जैवधर्म' के ग्यारहवें अध्यायके मौलवी साहब और वैष्णवोंके परस्पर विचार-प्रसङ्गमें इस सिद्धान्तका युक्तिसंगत विचारों एवं दृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा प्रतिपादन किया है। उर्दू, फारसी और अँग्रेजी आदि किसी भी भाषाको बोलनेवाला व्यक्ति वैष्णव हो सकता है। केवलमात्र संस्कृत-भाषी ही वैष्णव हो सकेंगे—ऐसी बात नहीं, प्रत्युत् ऐसा देखा जाता है कि हिन्दी, बंगला, उड़िया, आसामी, तमिल, तेलगु आदि भाषा-भाषी अनेकों व्यक्ति प्रचुर प्रतिष्ठासम्पन्न वैष्णव-पदवीको प्राप्त हो चुके हैं। अतएव मुसलमान, ईसाई, बौद्ध और जैन आदि जातियोंके व्यक्ति वैष्णव होनेके अधिकारी हैं। भाषाके वैषम्यसे वैष्णवताका वैषम्य नहीं होता।

भाषा विद्वेषियोंके विचारोंकी उपेक्षा करके श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने भाषाओंके माध्यमसे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्राकृत भावमयी शिक्षाका प्रकाश किया है। अप्राकृत दैव-संस्कृत-भाषा तथा तदनुगत बंगलाके अतिरिक्त उड़िया, हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओंमें उनके द्वारा रचित लगभग १०० ग्रन्थोंका परिचय पाया जाता है। उनमेंसे कतिपय ग्रन्थोंके नाम उनके रचनाकालके साथ नीचे दिए जा रहे हैं—

(क) संस्कृत—(१) वेदान्ताधिकरणमाला—१२७९ बङ्गाब्द* (२) दत्त कौस्तुभम् १२८१ (३) दत्तवंशमाला १२८३, (४) बौद्धविजय काव्यम् १२८५, (५) श्रीकृष्ण संहिता १२८७, (६) 'सम्मोदन भाष्य' (शिक्षाष्टकका) १२९३, (७) दशोपनिषद् चूर्णिका १२९३, (८) भावावलि (श्लोक और भाष्य) १२९३, (९) 'श्रीचैतन्यचरितामृत'—भाष्य (श्रीचैतन्योपनिषद्) १२९४, (१०) श्रीमदाम्नाय-सूत्रम् (११) तत्त्वविवेकः या श्रीसच्चिदानन्दानुभूतिः १३००, (१२) तत्त्वसूत्रम् १३०१, (१३) 'वेदार्क-दीधितिः व्याख्या (ईशोपनिषद्) १३०१, (१४) श्रीगौराङ्गस्मरणमंगलस्तोत्रम् १३०३ (१५) श्रीसनातन गोस्वामीके श्रीभगवद्धामामृतम्' ग्रन्थका भाष्य १३०५, (१६) श्रीभागवतार्कमरीचिमाला १३०८, (१७) श्रीभजन रहस्यम् (१८) स्वनियम द्वादशकम् १३०४, (१९) ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शनका भाष्य, (२०) शिक्षा-दशमूलम् इत्यादि ।

(ख) बङ्गला (गद्य)—(१) गर्भस्तोत्र-व्याख्या या सम्बन्ध तत्त्व चन्द्रिका बंगाब्द १२७७, (२) श्रीसज्जनतोषणी (मासिक पत्रिका १ म—१७ खंड) आरम्भ १२८८, (३) रसिकरञ्जन भाषा-भाष्य (गीताकी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती टीका सहित) १२९३, (४) श्रीचैतन्य-शिक्षामृत १२९३ (५) प्रेम-प्रदीप (पारमार्थिक उपन्यास) १२९३ (६) 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' का बंगानुवाद (बलदेव भाष्य) १२९३, (७) वैष्णव-सिद्धान्तमाला १२९५ (८) सिद्धान्त-दर्पणानुवाद १२९७, (९) विद्वत्‌रञ्जन भाषा-भाष्य (श्रीगीताके बलदेव भाष्य सहित) १२९८, (१०) श्रीहरिनाम, श्रीनाम, श्रीनाम-तत्त्व, श्रीनाम-महिमा, श्रीनाम-प्रचार (वैष्णव सिद्धान्तमालाके गुच्छ सहित) १२९९ (११) श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा १२९९ (१२) तत्त्वमुक्तावली या मायावाद-शतदूषणी १३०१ (१३) 'अमृतप्रवाह-भाष्य' (श्रीचैतन्य चरितामृत का) १३०२, (१४) श्रीरामानुज-उपदेश १३०३ (१५) जैवधर्म १३०३ (१६) 'प्रकाशिनी' वृत्ति सहित ब्रह्मसंहिताका बंगानुवाद १३०४, (१७) "श्रीकृष्णकर्णामृतम्-" ग्रन्थकी व्याख्या १३०५, (१८) 'पीयूषवर्षिणी' वृत्ति (श्रीउपदेशामृतम्‌की) १३०५, (१९) श्रीनरहरि ठाकुरके 'श्रीभजनामृतम्'-ग्रन्थका भाष्य १३०६, (२०) श्रीसकल्पकल्पद्रुमः ग्रन्थका बंगानुवाद १३०८ इत्यादि ।

(ग) बङ्गला (पद्य)—(१) हरिकथा-बंगाब्द १२५७ (२) शुभ-निशुंभ वध १२५८, (३) विजन-ग्राम १२७०, (४) संन्यासी १२७०, (५) कल्याण-कल्पतरू १२८८, (६) मनः शिक्षा १२९३, (७) श्रीकृष्णविजय १२९४ (८) श्रीनवद्वीप-धाम-माहात्म्य १२८७, (९) शरणागति १३००, (१०) श्रीशोकशातन १३००, (११) श्रीनवद्वीप भावतरङ्ग १३०६, (१२) श्रीहरिनाम चिन्तामणि १३०७, (१३) गीतावली, (१४) गीतमाला, (५) श्रीप्रेमविवर्त्त (सम्पादन) १३१३ इत्यदि ।

(घ) उर्दू-(१) वालि दे रेजिष्ट्री-सन् १८९६ ई०

*ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थोंके रचनाकालमें 'बंगाब्द' का प्रयोग किया है, जो विक्रमी सम्वत्‌से ९५० वर्ष पीछे प्रचलित हुआ है। अर्थात् बंगाब्दमें ९५० योग करनेसे वह विक्रमी सम्वत् होगा ।

(ङ) अँग्रेजी—[1] Poried (1st and 2nd Volume) 1857-58, [2] Maths of Orissa 1860, [3] Our Wants 1863, [4] Speech on Goutam 1866, [5] Speech on Bhagabatam, [6] Reflection 1871, [7] Thakur Haridas 1871, [8] Temple of Jagannath 1871, [9] Monasteries of Puri 1871, [10] Review (Personatity of Godhead) 1883, [11] Shri Chaitanya Mahaprabhu, His life and Precepts 1896, [12] A Beacon light etc.

उपरोक्त ग्रन्थ-तालिकाको देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ग्रन्थकार विभिन्न भाषाओंके पारदर्शी सुपंडित थे। यहाँ लेखकके जीवनके एक वैशिष्ट्यपर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। वे पाश्चात्य शिक्षाके धुरन्धर विद्वान होने पर भी पाश्चात्य प्रभावसे मुक्त थे। पाश्चात्य शिक्षाविदोंका कहना है—'Don't follow me, but follow my words', अर्थात् 'मैं जैसा करता हूँ, वैसा न करो, मैं जैसा कहता हूँ, वैसा करो,'। परन्तु श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका जीवन-चरित्र इस कथनका प्रतिवाद है। उन्होंने स्वलिखित विविध ग्रन्थोंमें जिन शिक्षाओंका उल्लेख किया है, उनमेंसे प्रत्येक शिक्षाका आचरण उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें करके दिखलाया है। इसीलिए उनकी शिक्षा और भजन-रीतिको 'भक्तिविनोद धारा' कहते हैं। उनके ग्रन्थोंमें कोई एक भी ऐसी बात नहीं है, जिसका उन्होंने स्वयं पालन न किया हो। अतएव उनकी लेखनी और जीवनी, करनी और कथनी एक ही है।

जिस महापुरुष का ऐसा वैशिष्ट्य है, पाठकोंको उनका परिचय जाननेके लिए कौतुहल होना स्वाभाविक है। विशेषत: आधुनिक पाठकोंको कोई भी विषय अवगत होनेके लिए उसके लेखकके सम्बन्धमें अपरिचित रहनेसे उसके द्वारा लिखित विषयोंके प्रति श्रद्धा नहीं होती। इसलिए संक्षेपमें लेखकके सम्बन्धमें दो एक बातें निवेदन कर रहा हूँ।

अतिमर्त्य महापुरुषोंके सम्बन्धमें आलोचना करते समय साधारण मनुष्योंकी जन्म-मृत्यु और स्थितिकालकी भाँति विचार करना भूल होगा। क्योंकि महापुरुषगण जन्म और मृत्युसे परे होते हैं। वे नित्यकाल विद्यमान रहने पर भी लोकमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव ही केवलमात्र लक्ष्य किया जाता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर १८ चैत्र १२४५ बंगाब्द (२ सितम्बर १८३८) रविवारको पश्चिम बंगालके नदिया जिलेके अन्तर्गत श्रीगौरा-विर्भाव-स्थली श्रीधाम मायापुरके सन्निकट 'वीर नगर' नामक ग्राममें अति उच्च कुलमें आविर्भूत होकर गौड़ीय गगनको प्रोद्भासित किया था और १३२१ बंगाब्द (२३ जून १९१४ ई०) में कलकत्ता महानगरीमें तिरोहित होकर श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके परमाराध्य श्रीश्रीगान्धर्विका-गिरिधारीकी मध्याह्न लीलामें प्रवेश किया।

इन ७६ वर्षोंके अल्पकालमें उन्होंने स्वयं चारों आश्रमोंका आचरण करके जगत्को शिक्षा दी है।

सर्वप्रथम उन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन करके बहुमुखी उच्च शिक्षाएँ प्राप्त कीं। तदनन्तर गार्हस्थ्य-जीवन में सदुपायसे अर्थोपार्जन करके कुटुम्बका भरण-पोषण करनेका जो आदर्श दिखलाया है, वह प्रत्येक गृहस्थके लिए अनुसरणीय है। इसी समय उन्होंने अँग्रेजी राजत्वमें शासन एवं विचार विभागके एक विशिष्ट उच्च पदस्थ कर्मचारी (गजटेड आफ़ीसर) के रूपमें सारे भारतवर्षका परिभ्रमण किया था। यहाँ तक कि जो प्रदेश-समूह उच्छृंखल (Unregulated Provinces) के नामसे कुख्यात थे, वहाँ पर इन महापुरुषने अपने प्रौढ़ सुविचारों तथा शासन सुकौशलसे शान्ति और सुश्रृंखलाकी स्थापना की थी। उन्होंने गृहस्थ जीवनमें भी अपने धार्मिक आदर्शसे तात्कालीन सभी लोगोंको आश्चर्य चकित कर दिया था। इस प्रकार गुरु-दायित्वपूर्ण कार्योंमें नियुक्त रहकर भी उन्होंने अनेकानेक भाषाओंमें अनेकों ग्रन्थोंकी रचना की। उनके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी तालिकामें ही हमने उन-उन ग्रन्थों के रचनाकालका उल्लेख किया है। उस तालिका को मिलाकर देखनेसे पाठकवर्ग उनकी आश्चर्य-जनक सृजन शक्तिका अनुमान लगा सकेंगे। तत्प-श्चात् राजकीय शासन एवं विचार-विभागसे अवसर ग्रहण करके वानप्रस्थ अवलम्बनपूर्वक उन्होंने नव-द्वीपके नौ-द्वीपोंके अन्तर्गत कीर्त्तनाख्या गोद्रुम-द्वीप में सुरभि-कुंजकी स्थापना की और वहीं पर बहुत समय तक भजन किया। तत्पश्चात् संन्यास ग्रहण करके उसीके समीप स्वानन्द-सुखद-कुंजमें रहकर उन्होंने ठीक श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने जिस प्रकार स्वयं और अपने अनुगत छः गोस्वामियोंद्वारा श्रीकृष्णकी आविर्भाव और अन्यान्य लीला-स्थलियों का प्रकाश किया था, उसी प्रकारसे श्रीचैतन्यदेव की आविर्भाव-स्थली तथा अन्यान्य गौरलीला-स्थलियोंका प्रकाश किया। यदि वे जगतमें आवि-र्भूत न होते, तो श्रीगौरांग महाप्रभुकी लीलास्थ-लियाँ तथा उनकी शिक्षाएँ विश्वसे विलुप्त हो जातीं। इसलिए समग्र गौड़ीय वैष्णव जगत इनका चिरऋणी है और रहेगा। यही कारण है कि समग्र वैष्णव-जगतमें इनको 'सप्तम गोस्वामी' का अत्युच्च सम्मान प्रदान किया गया है।

इस महापुरुषने अपने जीवनके उच्च आदर्श द्वारा जिस प्रकार लोक-शिक्षाका प्रचार-प्रसार किया है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें ग्रन्थादि प्रणयन करके भी प्रचुर शिक्षा दी है। इसके अति-रिक्त इनके दानके और भी एक वैशिष्ट्यका उल्लेख न करनेसे मादृश-जीवकी घोर अकृतज्ञता ही प्रका-शित होगी। श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने समग्र विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रकटित धर्म-प्रचार के मूल-सेनापतिके रूपमें जिस महापुरुषको इस जगतीतलमें आविर्भूत कराया है, वे मदीय गुरु-पादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके रूपमें समग्र विश्वमें सुपरिचित हैं। इस महापुरुषको जगतमें आविर्भूत कराना—श्रीमद्-भक्तिविनोद ठाकुरकी एक अतुलनीय अभिनव कीर्त्ति है। साधु-वैष्णव समाज उनको संक्षेपमें 'श्रील प्रभुपाद' कहकर ही गौरव ज्ञापन करता है। मैं भी भविष्यमें उक्त परममुक्त महापुरुषके नामके स्थल पर 'श्रील प्रभुपाद' का उल्लेख करूँगा।

श्रील प्रभुपादने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पुत्र के रूपमें या अन्वय रूपमें, यहाँ तक कि पारम्पर्य रूपमें आविर्भूत होकर समग्र विश्वमें श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव द्वारा आचरित और प्रचारित श्रीमाध्व गौड़ीय वैष्णव धर्मका अत्युज्ज्वल पताका उत्तोलन करके धर्म-राज्यका प्रभूत कल्याण और उन्नति साधन किया है। अमेरिका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, स्वीटजरलैण्ड और बर्मा आदि सुदूर पश्चिमी और पूर्वी देशसमूह भी इस महापुरुषकी कृपासे वंचित नहीं हुए हैं। सारे भारतवर्ष और भारतके बाहर सारे विश्वमें चौसठ प्रचार-केन्द्र—गौड़ीय मठोंकी स्थापना कर श्रीचैतन्य-वाणीका प्रचार किया था। साथ ही उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सारे ग्रन्थोंका प्रकाशन करके जगतमें अतुलनीय कीर्त्ति स्थापित की है। काल प्रभावसे अर्थात् कलिकी प्रबलतासे गौड़ीय वैष्णव धर्ममें नानाप्रकारके असदाचार-कदाचार, असिद्धान्त आदिका प्रवेश हो जानेके कारण तेरह अपसम्प्रदाय निकल पड़े थे। ये तेरह अपसम्प्रदाय हैं—

आउल-बाउल कर्त्ता भाजा नेड़ा दरवेश साईं।
सहजिया सखीभेखी स्मार्त्त जाति गोसाईं॥
अतिबाड़ी चूड़ाधारी गौराङ्गनागरी।
तोता कहे ए तेरह सङ्ग नाहि करि॥

श्रील प्रभुपाद द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के ग्रन्थोंका प्रकाश और प्रचार होनेसे पूर्वोक्त अपसम्प्रदायोंकी अपचेष्टाओंका प्रचुर परिमाणमें ह्रास हुआ है। फिर भी दुःखका विषय है कि इतना होने पर भी कलिके प्रभावसे आहार-विहार और वाँचा-पाड़ा अर्थात् जीवन-बीमा (Life Insurance) ही किसी-किसी धर्म-सम्प्रदायके प्रधान प्रचारके विषय हो पड़े हैं। वास्तवमें यह सब पशुवृत्तिका ही नामान्तर या पाशविक अनुशीलनका प्रसार मात्र है। हम पहले ही ऐसा कह आये हैं।

'जैवधर्ममें'—पूर्वोक्त तथाकथित कलि प्रचोदित धर्म—धर्म नहीं है, धर्मका स्वरूप क्या है, धर्मके साथ हमारा सम्बन्ध क्या है, धर्मका पालन करनेसे क्या लाभ है, तथा धर्मका यथार्थ तात्पर्य क्या है,—आदि विषयोंका बड़ा ही साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लगभग ८०० पृष्ठोंके इस छोटेसे ग्रन्थका पाठ करनेसे सम्पूर्ण शास्त्रोंका तात्पर्य अत्यन्त संक्षेपमें जाना जा सकता है। इसमें प्रश्नोत्तरके रूपमें विश्वके सारे धर्मोंकी तुलनामूलक आलोचना की गई है। एक वाक्यमें मैं यह कह सकता हूँ कि इस छोटेसे ग्रन्थमें गागरमें सागरकी भाँति सम्पूर्ण भारतीय शास्त्रोंका सार भरा हुआ है। अतएव यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि किसी धर्म-जीवनमें इस ग्रन्थका पाठ नहीं करनेसे धर्म-तत्त्वज्ञानका उसमें अवश्य ही अभाव रह जायगा।

इस ग्रन्थमें किन-किन महत्वपूर्ण विषयोंका विवेचन हुआ है इस विषयको जाननेके लिये पाठक वर्गको इस ग्रन्थकी अनुक्रमणिका देखनेके लिए अनुरोध करता हूँ। ग्रन्थकारने शास्त्र-मर्यादाको अक्षुण्ण रखते हुए सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक तत्त्वको तीन खण्डोंमें प्रकाश किया है। कुछ अनभिज्ञ लेखकोंने (१) सम्बन्ध, (२) अभिधेय और (३) प्रयोजन—इस क्रमका उल्लङ्घन कर सबसे पहले ही (३) प्रयोजन तत्त्वकी आलोचना करके

(१) सम्बन्ध और (२) अभिधेय तत्त्वोंका वर्णन किया है, जो वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत और विशेषकर प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्भागवत आदिके सिद्धान्तोंके सर्वथा प्रतिकूल है।

पहले खण्डमें नित्य और नैमित्तिक धर्मोंका विश्लेषण है, दूसरे खण्डमें सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्त्वोंका दृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर साङ्गोपाङ्ग वर्णन है तथा तीसरे खण्डमें रस विचारका मार्मिक विवेचन है। श्रील प्रभुपादकी विचार-धारा के अनुसार जब तक कुछ उन्नत अधिकारकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक 'रस विचार' में प्रवेश करनेकी जो अनधिकार चेष्टा करेगा, उसका हितके बदले अहित ही होगा। श्रील प्रभुपादने 'भाई सहजिया,' 'प्राकृतरस-शतदूषणी' तथा अन्यान्य अनेकों प्रबन्धों में इसे सुस्पष्टरूपसे व्यक्त किया है। इसलिए इस विषयमें सतर्क रहनेकी आवश्यकता है।

मूल 'जैवधर्म' ग्रन्थ बंगला भाषामें है। फिर भी इसमें शास्त्रीय-प्रमाण आदि सम्बलित संस्कृत भाषाका प्रचुर प्रयोग किया गया है। इस ग्रन्थकी व्यापक लोक-प्रियताका इसीसे पता चलता है कि थोड़े ही समयमें बंगला भाषामें इसके दस-बारह बड़े बड़े संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी भाषामें अनुदित जैवधर्म श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित बंगलाके 'जैवधर्म' के अभिनव संस्करणकी पद्धति अनुसरण करके मुद्रित हुआ है। हिन्दी पारमार्थिक मासिक—'श्रीभागवत-पत्रिका'के सुयोग्य सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने बड़े परिश्रमसे इस ग्रन्थको हिन्दीमें अनुदित कर उक्त पत्रिकाके पहले वर्षसे छठे वर्ष तकमें क्रमशः प्रकाशित किया है। अब अनेक श्रद्धालु व्यक्तियोंके बारम्बार अनुरोध पर हिन्दी भाषी धार्मिक जनताके कल्याणार्थ उसीको पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रसंगवश मैं यह कहनेके लिए बाध्य हो रहा हूँ कि अनुवादक हिन्दी भाषी हैं, बंगला उनकी मातृ-भाषा नहीं है; तथापि उन्होंने इस ग्रन्थका अनुशीलन करनेके लिए बङ्गला भाषाका अध्ययन किया तथा तथा उसमें विशेष अभिज्ञता प्राप्त करके कठोर परिश्रम और कष्ट स्वीकार करके इस ग्रन्थका अनुवाद किया है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि इसमें मूल-ग्रन्थके कठिन दार्शनिक एवं रस-विचारके अतिगहन तथा परमोन्नत सूक्ष्म भावोंको भलीभाँति रखा हुई है। हिन्दी जगत इस महान कार्यके लिए इनका कृतज्ञ रहेगा। विशेषतः श्रील प्रभुपाद और श्रील भक्ति-विनोद ठाकुर इनके अक्लान्त सेवाकार्य के लिये निश्चितरूपमें इनपर प्रचुर कृपा करेंगे।

और भी कतिपय भगवद्भक्तोंकी इस ग्रन्थके मुद्रण और प्रकाशन कार्यमें सहायता और सहानुभूतिका उल्लेख नहीं करनेसे मेरे कर्त्तव्यकी हानि होगी। इनमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज (हाल हीमें जिनका परलोकगमन हो चुका है), प्रिय कुंजबिहारी ब्रह्मचारी, प्रिय कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, प्रिय शेषशायी ब्रह्मचारी प्रिय अच्युत गोविन्द दासाधिकारी और पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न काव्य-तीर्थके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

सर्वोपरि मेरा वक्तव्य यह है कि मैं उक्त भक्त-

जनोंका गौरवपात्र होनेके कारण ही इस ग्रन्थके सम्पादनमें मेरा नाम व्यहृत हुआ है। वास्तवमें इस ग्रन्थके अनुवादक और प्रकाशक उक्त त्रिदण्डि-स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ही सम्पादनका सारा कार्य करके मेरे विशेष आशीर्वाद के पात्र हैं।

मुझे पूरा विश्वास है कि एतद्देशीय श्रद्धालु जनतासे लेकर विद्वत् मण्डली तक—सभी इस ग्रन्थ का पाठ करके श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित सम्बन्धाभिधेयप्रयोजन-तत्त्वके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त कर श्रीश्रीराधाकृष्ण और श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधर्ममें अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।

अन्तमें यह निवेदन है कि इस ग्रन्थके मुद्रण कार्यमें अत्यन्त शीघ्रताके कारण कुछ मुद्राकर प्रमादादि रह गये हैं। परन्तु वे अत्यन्त साधारण कोटिके होनेके कारण 'शुद्धि-पत्र' नहीं दिया गया है। पाठकवर्ग इस ग्रन्थका पाठ कर हमारे प्रति प्रचुर आशीर्वाद करें—यही प्रार्थना है। अलं अति वि तारेण।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
पो०—मथुरा (उ प्र०)
कार्त्तिकी पूर्णिमा, सम्वत् २०२३

श्रील प्रभुपाद-किङ्कर
त्रिदण्डि भिक्षु—
श्रीभक्ति प्रज्ञान केशव

गौरक्षा-अभियान—

बापूकी तो मानो

[गांधीजीके गोहत्याके बारेमें क्या विचार थे—उन पर आधारित यह लेख सरकारसे अनुरोध करता है कि कम-से-कम बापू की बात मानकर वह गौ-वंश हत्या शीघ्र ही बन्द कर दे।]

—हरिकिशनदास अग्रवाल

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने भी समय-समय पर गौवध निषेधके बारेमें अपने विचार प्रकट किये थे। गांधीजी राष्ट्रके मार्गदर्शक थे और देशके आदर्श पुरुष थे।

हमारी सरकार बात-बातमें गांधीजीके प्रमाण देती है और उनकी बातें अनुकरणीय मानती है। हम अपनी सरकारको गौवध निषेधके बारेमें गांधी-जीके विचार प्रस्तुत करते हैं।

१—जो लोग गोवध करते हैं, वे अज्ञानी हैं।
[गांधीजी–नवजीवन–८।८।१९२०]

इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि हमारी सरकार अज्ञा-नतामें ही गौवध करा रही है। उन्हें हित अहितका

पता नहीं। वह श्रेय मार्गको न अपना कर प्रेय मार्गको अपना रही है। श्रेय मार्ग है गोसंवर्धन और प्रेय मार्ग है गौ-हत्या।

जिन लोगोंमें हिन्दू धर्मके संस्कार नहीं, प्राचीन संस्कृतिका पता नहीं, वे ही गौवधका पक्ष ले रहे हैं। जिनमें कुछ भी धर्मके संस्कार हैं, वे कभी भी गोहत्या समर्थनकी बात नहीं सोच सकते।

२—गाय हिन्दुस्तानकी कामधेनु है [गांधीजी–नवजीवन, ९-१०-१९२१]। गाय हमारी माता है, उसने अपने दूधसे हमें पाला है। एक समय था भारतमें दूध-घी की नदियाँ बहती थीं। किन्तु आज १॥) सेरमें भी अच्छा दूध नहीं मिलता, १२) किलो में शुद्ध घी नहीं मिलता। प्रतिदिन ३० हजार गायें भारतवर्षमें कटती हैं, इसलिए गाय वंशका नाश हो रहा है। उसकी आहसे देशका संतुलन बिगड़ रहा है।

३—अगर गायके जुबान होती तो वह हमारे अमानुषिक अपराधोंकी ऐसी गवाही देती कि सारी दुनियाँ काँप उठती [गाँधीजी-नवजीवन, ९-१०-१९२१]। गायके जुबान नहीं, किन्तु जनता उस बेजुबानकी जुबान बनकर अब पुकार उठी है। जनताकी आवाज सरकारके कान खोल देगी। सरकारको गोहत्या अवश्य बन्द करनी पड़ेगी।

पशु वह है, जो अपने पेटके लिए दूसरोंको मारता है। मनुष्यका व्यवहार गायके प्रति पशुत्वसे भरा हुआ है और गायका व्यवहार मानवके प्रति मनुष्यत्वसे भरा हुआ है। गाय पशुके रूपमें मनुष्य है और गोहत्यारा मनुष्यके रूपमें पशु है।

४—मेरे विचारसे गौरक्षाका प्रश्न स्वराज्यसे छोटा नहीं, कई बातोंमें मैं इसे स्वराज्यके प्रश्नसे भी बड़ा मानता हूँ [गाँधीजी–नवजीवन,२५-१-२५]। जब राष्ट्रपिता गांधीजी जैसे महान् आत्मा जिन्होंने देशको स्वतंत्र कराया और जिनकी नीति देशकी नीति मानी जाती थी, आज उनके भी विचारोंको ठुकराया जा रहा है। जब सरकार राष्ट्रपिताकी नहीं मानेगी, तो सरकार इस बात की कैसे आशा रख सकती है कि जनता सरकारकी मानेगी ? यही कारण है कि आजकल सभी लोगोंमें, विद्यार्थियों तकमें सरकारके प्रति असंतोषका वातावरण फैला हुआ है। जो लोग खुद अंधेरेमें हैं, वे दूसरेको प्रकाश किस तरह दिखा सकते हैं ? जिन्होंने महान् पुरुषोंकी बातको मानना नहीं सीखा, वे दूसरोंसे अपनी बात मनवानेकी क्या आशा रख सकते हैं ?

सरकारमें कुछ लोग ऐसे हैं जो कि कहते हैं कि जनता गोवध निषेध भावनाके आधार पर चाहती है। भावना हर एक मनुष्यके अन्दर प्रधान है। अगर मनुष्य में भावना नहीं, तो वह मनुष्य नहीं। राष्ट्रपिता गांधीजीने स्वराज्य दिलाया तो भावनाके आधार पर दिलाया। महाराष्ट्र प्रान्त बना तो भावनाके आधार पर बना। अभी भी महाराष्ट्र और मैसूरके बीच जो भूमिरेखाका झगड़ा चल रहा है, वह भी भावनात्मक ही है।

गोवधका प्रश्न हिन्दू जनताका भावनात्मक

प्रश्न है और जो हिन्दू गोवध निषेधकी भावना नहीं रखता, वह हिन्दू कहलानेके लायक नहीं।

५—मेरे मनमें गोरक्षा कोई सीमित नहीं। मैं गोरक्षाकी प्रतिज्ञा करता हूँ, मैं तो संसार भर की गायोंको बचानेका नियम रखूँगा। मेरा धर्म यह सिखाता है कि मुझे आचरणसे बता देना चाहिए कि गोवध या गोमांस भक्षण पाप है और उसे छोड़ देना चाहिए (गांधीजी)। दूध अनाजकी समस्या-पूर्तिमें बहुत सहायक है। गौ बच्चोंके पालनेमें संसार प्रसिद्ध प्राणी है। भारतमें गायको गायमाता कहते हैं, क्योंकि वह अपने दूधसे ममतामयी माँ की तरह ही शिशुओंका पालन करती है। माता पर छुरी चलाना बहुत बड़ी कृतघ्नता है। यह पाप अक्षम्य है।

६—मेरी दृष्टिमें गोवध और मनुष्य-वध एक ही चीज है (गांधीजी)। गांधीजी की इतनी विशाल दृष्टि थी कि वे गायको अपनी आत्मा समझते थे; अपनी आत्मा और गायकी आत्मामें कोई भेद नहीं समझते थे। गाय पर जब छुरी चलती थी तो उन्हें यह प्रतीत होता था कि जैसे उन पर ही छुरी चलायी जा रही हो। यह थी उनकी आत्मीय भावना, जिससे उनका विकास हुआ। देशको बचानेके लिए आज यही भावना फिरसे जाग्रत करनेकी आवश्यकता है। स्कूलों और कालेजोंमें विद्यार्थियोंकी उद्दण्डता इसी भावनाके अभावका कारण है। स्कूल और कालेजोंमें विद्यार्थियोंकी उद्दण्डता हमारी सरकारके सामने साक्षात् प्रमाण है कि जब वे ही अपने बापूकी बात नहीं मानते तो वे कैसे उम्मीद रख सकते हैं कि विद्यार्थी उनकी बात मानें।

७—मेरे लिए गोरक्षा मेरा उद्देश्य है (गांधीजी नवजीवन, ३-५-१९२५)। यहाँ पर भी गांधीजीने गोरक्षाको सर्वस्व माना है। मगर हमारी सरकार इसके महत्वको नहीं समझती, यह हमारे देशका दुर्भाग्य है।

गांधीजीने गोरक्षाके प्रश्न पर स्पष्टतः समय-समय पर अपने विचार प्रकट किए हैं। गांधीजी देशके मार्ग-दर्शक, राष्ट्रपिता, अध्यात्-चिन्तक, दूरदर्शी और विचारशील महान् आत्मा थे। जब हम और क्षेत्रोंमें गांधीजीकी बातको प्रामाणिक मानकर अनुकरण करते हैं, तो आज गोरक्षाके प्रश्न पर भी गांधीजीके विचारोंको सामने रखकर गोहत्या कानून सरकार द्वारा बन्द की जानी चाहिए।

———

बेकार गौ और दुष्ट आदमी

हिन्दुस्तान आदि पत्रोंमें अनेक पाठकोंके पत्र ऐसे छपते रहते हैं, जो गौरक्षा आन्दोलनके सम्बन्ध में गलत धारणा पैदा करते हैं। कहा जाता है, 'बेकार गौवोंकी चिन्ता छोड़कर आदमीको भुखमरी से बचाना चाहिए, आदमी गौ से बदतर नहीं है' इत्यादि।

ऐसा जान पड़ता है कि गौकी चिंता न करने वाले ये (पत्र-लेखक) लोग दिन-रात मानव-सेवा में ही लगे हुए हैं और उसीमें इतने तन्मय हैं कि इन्हें और किसी बातकी चिंता नहीं है।

हे मानव सेवा करनेवालों ! हमने यह कब कहा है कि मनुष्यकी चिन्ता छोड़ दो ? परन्तु आप हमें किसी दूसरे कामसे रोकते क्यों हैं ? हमने कब कहा है कि अन्नकी कमी है, इसलिये बेकार आदमियों को मार दो ? गौ अपनी जगह है, आदमी अपनी जगह। आदमी ही आदमी सब तरफ नजर आते हैं, और ऐसे आदमियोंकी संख्या बहुत अधिक है, जो एकदम बेकार हैं, दूसरेकी कमाई पर जीते हैं, मौजें करते हैं। इनसे तो 'गौ' बेहतर ही है। गौ किसीका कुछ नहीं चुराती, डाका नहीं डालती, हत्याएँ नहीं करतीं, किसीकी लड़कियोंको भगा कर कहीं बेचती नहीं, आदमीका खून नहीं पीतीं, घी में डालडा नहीं मिलातीं, चोर-बाजारी नहीं करतीं, भ्रष्टाचार नहीं करतीं। गौ वैसे आदमी की तरह नहीं है, जिसे खटमल-पिस्सू ही नहीं प्लेगका कीड़ा कह सकते हैं।

बेकार कही जानेवाली गौ हमारा कुछ बिगाड़ती नहीं है। आदमी जो अन्नकी बर्बादी करते हैं, उनमेंसे अधिकांश छूतकी बिमारीसे सड़े हुए हैं और अपनी बीमारी फैलाते हैं, कितने ही कोढ़ी हैं, कितने ही तपेदिकवाले हैं और भिखारी हैं ? इनसे क्या लाभ है ? परन्तु हमने कभी यह नहीं कहा कि अन्न बचानेके लिये इन्हें मार दो। हमने यह भी नहीं कहा कि जेलें तोड़ दो और नैतिक अपराध करनेवाले प्रत्येक जनको मृत्यु दण्ड देकर अन्नकी समस्या हल कर लो। तब हमसे वैसी बातें क्यों की जाती है ? मानवका महत्व है और इसीलिए हमारी वैसी भावना है कि हम उसे वैसा श्रेष्ठ समझते हैं और कोढ़ीको भी नहीं मारते। सड़े-गले अङ्गको लटकाए फिरना 'दाकियानुसीपन' नहीं है ? वैसा कानून 'भावना' के आधार पर ही बना है और हमारी वैसी भावना गौ के प्रति भी है। इसके लिये भी हमारे देशमें कानून क्यों न बने ?

—आचार्य श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी

[लोकलोक से साभार]

राष्ट्र-कलंक गोहत्या अविलम्ब बन्द हो

भारतीय आर्य-संस्कृति, सभ्यता, परम्परा तथा धर्मका गौजातिसे अच्छेद्य सम्बन्ध है। गौ हमारी संस्कृतिका प्राण है, हमारी सभ्यताका मानबिन्दु है तथा धर्मका अभिन्न अङ्ग है। गौके बिना हमारी संस्कृति और हम प्राण-रहित मुर्देकी भाँति हैं।

भारतीय आर्य-संस्कृतिके अतिरिक्त संसारकी सारी प्राचीन संस्कृतियाँ, सभ्यताएँ और जातियाँ सम्पूर्णरूपसे मिट गयीं। उनके नाम ही केवल मात्र इतिहासके पन्नों पर अवशिष्ट हैं। आज भी कितनी ही अर्वाचीन सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ विनाशके कागार पर अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रही हैं। इसके मूलभूत कारणोंका अनुसंधान करने पर पता चलता है कि उन संस्कृतियोंका कोई ठोस और सनातन आधार नहीं रहा है। इनके विपरीत भारतीय आर्य-संस्कृति कतिपय ठोस और कभी भी नष्ट न होने वाले सनातन तत्त्व पर आधारित है। इसका फल यह होता है कि समय-समय पर जो विरुद्ध तत्त्व, भारतीय संस्कृतिको दबाने या नष्ट करनेके लिए इससे टकराये, वे टकरा कर स्वयं हो चूर-चूर हो गये। परन्तु आज आर्य-संस्कृतिके उन मूलभूत आधारोंकी जड़ों पर ही देश-विदेश सब ओरसे प्रबल आक्रमण हो रहे हैं। भारतीय आर्य-संस्कृतिके इन मूलभूत स्तंभोका वर्णन श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार किया गया है—

सदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥
(श्रीमद्भागवत ७।४।२७)

गो, ब्राह्मण, साधु, वेद, देवता, धर्म और परमेश्वर—इनके प्रति श्रद्धा और सेवा ही हमारा प्रधान कर्तव्य है। ये ही हमारी संस्कृतिके प्रधान स्तंभ हैं। जो व्यक्ति, जो समाज, जो जाति या राष्ट्र इनके प्रति विद्वेष आचरण करता है, वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। आजकल हमारे देशमें भी इनके प्रति द्वेष आचरण आरम्भ हो गया है। हमारे लिये और हमारे राष्ट्रके लिये यह सबसे बड़े दुर्भाग्यकी बात है।

आज आर्य-संस्कृति खतरेमें है। उसके उपरोक्त सभी मूलस्तंभोंकी जड़ें खोदनेकी प्रबल चेष्टाएँ चल रही हैं। विशेष कर गोवधका महापाप महा-आतंककारी विनाशके रूपमें राष्ट्रके सिर पर मंडरा रहा है। लगभग ३०,००० गौवोंकी प्रतिदिन नृशंस हत्या हो रही है। 'गोहत्या बन्द हो'—की आवाज उठानेवाले, भद्दी राजनीतिसे दूर रहनेवाले निःस्वार्थी और सर्वदा विश्वकल्याणकी सच्ची कामना रखनेवाले साधु-संतों और सज्जन व्यक्तियोंको जेलोंमें ठुसा जा रहा है, उसके लिये अनशनकारियों की सर्वप्रकारसे अवज्ञा की जा रही है। पर दूसरी ओर पंजाबको विभक्त करानेवालोंकी अनशनकी धमकी पर ही सरकार झुक जाती है, उन्हें तरह तरहसे मनाती है। गोहत्याको बन्द करनेके लिये आन्दोलन और अनशनकारियोंको परामर्श दिया जाता है कि बिहार आदिमें सूखेसे उत्पन्न अकाल की स्थितिका सामना करनेके लिये, भूखे मनुष्योंके प्राण बचानेके लिये इस समय आन्दोलन और

अनशन स्थगित होने चाहिए, परन्तु राष्ट्र विघटनकारी अकाली सन्तजीको कोई ऐसा परामर्श क्यों नहीं देता, समझमें नहीं आता। गोहत्या राष्ट्र हत्या है—इसको रोकना राष्ट्रके प्रत्येक समझदार व्यक्तिका सर्वप्रधान कर्तव्य है।

भारतवर्ष ऋषि-मुनियोंकी भूमि है। यह धर्म का क्षेत्र है। इसकी आर्थिक व्यवस्थाका मूल स्तंभ है—गोधन। गोदान ही सर्वोत्तम दान माना गया है। आर्य जाति अनादि कालसे गायको माता तथा सांढ़को पिता—धर्मका स्वरूप मानती आ रही है। गायोंमें सभी देवताओंका वास माना गया है। आज उसी गोमाताकी हत्या पचास करोड़ लोगोंकी भावनाको ठोकर मार कर भी जारी है। यह महापाप विकराल रूप धारण करके वर्तमान सरकारके साथ-साथ समूचे राष्ट्रको निगलनेको मुख बायें खड़ा है। इसीलिये आज राष्ट्रके हितचिन्तक महात्मागण अपना सर्वनाश करनेके कुहठ पर अड़ी सरकारको तरह-तरहसे सावधान कर रहे हैं, अनशन और अहिंसक आन्दोलनोंके द्वारा सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षण करने असफल होने पर अनशन द्वारा अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर रहे हैं। परन्तु खेद की बात है, इस हठी सरकारके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। इससे तो 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' का ही परिचय मिल रहा है।

कुछ दिन पहले तक तो गोहत्यारे और उसके समर्थक चंद लोग यह तर्क प्रस्तुत करते थे कि गो हत्या पर प्रतिबन्धकी माँग केवल कुछ सम्प्रदायवादी या प्रतिक्रियावादी ही कर रहे हैं। परन्तु गत ७ नवम्बरकी उमड़ती अगणित जनताकी बाढ़ देख कर अब पैंतरा बदल दिया है। अब वे अन्य तर्क उपस्थित करते हैं। उनकी सबसे प्रधान दलील यह है कि भारतमें तो लोगोंको ही भरपेट अन्न नहीं मिल रहा है, ऐसी दशामें यदि गोहत्या बन्द कर दी गयी तो खाद्य-समस्या भीषण जटिल हो जायगी परन्तु यह सर्वथा निराधार और बोगस तर्क है। ऐसा तर्क केवल गँवार और अशिक्षित व्यक्ति ही पेश करते हैं। यदि उनसे यह पूछा जाय कि क्या गौवें गेहूँ और चावल खाती हैं, जो मनुष्योंका पेट काट कर उन्हें देना होगा? वास्तविकता तो यह है कि इन नरपिशाचोंको इतना भी पता नहीं है कि पशुओंके लिये जो भोजन होता है, वह मनुष्यका भोजन नहीं होता। भगवानने ही पशुओंको पैदा कर उनके भोजनको भी सुन्दर रूप से व्यवस्था कर दी है। गेहूँ, धान, ज्वार, बाजरा आदिके पौधोंमें लगभग ५% भाग मनुष्यका भोजन और सैंकड़ा ९५% भाग पशुओंका खाद्य होता है। इसके अतिरिक्त घास, पत्ते और मनुष्यके बचतके अन्न आदिसे ही पशु अपना पेट भर लेते हैं। अतएव खाद्य-समस्याकी बात बेहूदी ही है।

दूसरा तर्क जो वे उपस्थित करते हैं, वह यह है कि यह गोहत्या बन्द हो गयी तो पशुओंकी इतनी बेशुमार संख्या बढ़ जायगी कि हमारी अर्थ-व्यवस्था अचल हो जायगी। दूधार गौवों का पेट काट कर बेकार गौवोंका चारा देनेमें करोड़ों रुपये बर्बाद होंगे। इस प्रकारकी कटौती करनेसे दूधार गौवें भी कम दूध देने लगेंगी। परन्तु यह तर्क भी पहले की तरह

ही थोथा और निरर्थक है। यथार्थ बात तो यह है कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इस तर्कको नहीं सुनेगा, बल्कि ऐसे तर्क उपस्थित करनेवाले गोमांस भक्षी पश्चात्योंकी उलटीको ही चर्वण करनेवाले हैं। गाय दूध न दे तो भी वर्षोंतक माता जैसे दूध पिलानेवाली गौमाताको मार कर खा जाना क्या यह मानवता है? इसके अतिरिक्त यदि गाय दूध नहीं दे तो भी उससे कई लाभ हैं—उन्हें तो पता भी नहीं है। गौका गोबर उत्तम कोटिका खाद है। आजकल गोबरसे मूल्यवान गैसका भी उत्पादन हो रहा है जिसे विभिन्न प्रकारसे उपयोग किया जा रहा है। गोमूत्र अनेक रोगोंकी अचूक दवा है—यह उनके गुरु पाश्चात्य रोग विशेषज्ञ भी अब मान रहे हैं। गाँवोंकी गरीब जनता जो कोयला या लकड़ी नहीं खरीद सकती, गोबरके कंडे जला कर रसोई आदि करके अपना निर्वाह करती है। फिर गौ तो अमर नहीं है, जो कभी मरेगी ही नहीं। भैया! एक न एक दिन तो वह मरेगी ही और अपना सर्वस्व तुम्हें दे ही जायेगी। फिर उसे मार कर अपने सिर पर क्यों महापाप लाद रहे हो?

उनका तीसरा तर्क यह है कि गौवें इतनी दुबली, पतली और मरीयल हैं कि उनको जीवित रखनेसे क्या लाभ है। परन्तु उनकी ऐसी होनेका कारण क्या है?—अपने देशकी निर्धनता। इस निर्धनता कारण भी सरकारकी निकम्मापन ही है जो आजसे २० वर्षोंमें तनिक भी अर्थ-व्यवस्था सुधरी नहीं, बल्कि निरन्तर बदतर ही होती गयी। फिर भी यदि इस तर्कके बल पर यदि गौवों की हत्या की जा सकती है तो निर्धन और भरपेट अन्न संग्रहमें असमर्थ दुर्बल और शैय्याशायी लोगों को भी क्या सरकार मारना आरम्भ करेगी—क्या यह मानवताके विपरीत नहीं होगी?

कुछ लोग यह भी तर्क उपस्थित करते हैं कि बूढ़ी गौवोंको क्यों न खत्म किया जाय? क्योंकि चारेका अभाव है और दूध देनेवाली गायोंका चारा वे ही खा जाती हैं। फलतः इनका दूध कम होता है। परन्तु चाराकी कमीके लिये दोष किसका है? इसके अतिरिक्त आजकल अन्नका अभाव है। फिर भी हम यह नहीं कहते कि बेकार बूढ़े आदमियों या बूढ़े माता-पिताको मार दो। क्या ऐसा करना मानवताके विपरीत नहीं होगा? चारों ओर मनुष्य-ही-मनुष्य नजर आते हैं और इनमें ऐसे लोगोंकी ही संख्या अधिक है जो एकदम बेकार हैं, दूसरोंकी कमाई पर जीते हैं। इनमें बहुतसे कोढ़ी हैं, टी. बी. वाले हैं, जन्मान्ध और विकलांग तथा छूतकी बिमारियोंसे सड़े हैं, इन पर करोड़ों रुपयेका खर्च किया जाता है। बूढ़े लोगों तथा सरकारी सेवाओंसे अवसर प्राप्त लोगोंको पेन्सन देनेमें करोड़ों रुपयेका खर्च है। आखिर यह सब क्यों होता है? क्या तर्क उपस्थित करनेवाले यह नहीं जानते कि यह मानवता है? पशुओं और मनुष्योंमें यही अन्तर है—मनुष्य भावना युक्त होता है, उसमें कृतज्ञता, दया, विवेक और सर्वोपरि ईश्वरोपासना रूप धर्म होता है पशुओंमें यह धर्म नहीं होता। यह धर्म रूपी रेखा ही मनुष्य और पशुको अलग करती है। पशु तो आहार, निद्रा, भय और मैथुनमें ही जीवनको गँवा देते हैं। यदि मनुष्य शरीर ग्रहण करके भी इसी पशु धर्ममें गँवा दिया तो वह मनुष्य शरीरधारी

प्राणी भी पशु ही माना गया है। यही सिद्धान्त भारतीय संस्कृतिका रीढ़ है—

> आहार निद्रा भय मैथुनञ्च,
> सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषः,
> धर्मेण हीना पशुभिः समाना॥

अतएव उपर्युक्त प्रकारके तर्क उठानेवाले पशु श्रेणीमें ही परिगणित होंगे। बेकार कही जानेवाली गौवें टी. बी. रोगियों, कोढ़ियों, अपङ्गों आदि से तो बेहतर ही हैं। वे रोग नहीं फैलातीं, किसीका कुछ चुराती नहीं, डाका नहीं डालतीं, सरकार नहीं उलटतीं, हत्याएँ नहीं करतीं, लड़कियाँ नहीं भगातीं, आदमीका खून नहीं पीतीं। फिर भी इनकी क्यों न रक्षा की जाय, फिर इनके भी पालन-पोषण की सुव्यवस्था क्यों न की जाय ?

यदि पाकिस्तानमें गोहत्या बन्दीका कानून बन सकता है, यदि नेपालमें गोहत्या निषेध है, तो भारत में भी गोहत्या-बन्दीका कानून क्यों नहीं बन सकता ? यदि अमेरिकामें घोड़े, आस्ट्रेलियामें कंगारू तथा भारतमें भी मोर केवल सौन्दर्यके कारण ही राष्ट्रीय पशु और अवध्य घोषित हो सकते हैं, तो फिर भारतमें सर्वगुण-सम्पन्न गौ—जिसके साथ भारतकी समस्त सांस्कृतिक परम्पराका अविच्छेद्य सम्बन्ध है, जो हमारी ही नहीं जगत् जननी है—क्यों न अवध्य हो ? क्यों न गोहत्या-बन्दीका कानून बने ?

आज पुरीमें श्रीशंकराचार्य और वृन्दावनमें श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आमरण अनशनमें बैठे हैं। उनका जीवन खतरेके अन्तिम बिन्दू तक पहुँच गया है। श्रीरामचन्द्रवीर आदि सैकड़ों गोभक्तोंका जीवन भी खतरेमें है, हजारों लोग जेलोंमें बन्द हैं, हजारों बन्द हो रहे हैं, सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समितिका आन्दोलन सर्वत्र जोरोंसे चल रहा है। सारे भारतमें इसकी प्रतिक्रिया देखी जा रही है। काँग्रेसकी केन्द्रिय कार्य समितिने भी सरकार को गोहत्या बन्दीका परामर्श दिया है। फिर भी यह महापाप जारी है, यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है। ऐसी दशामें धार्मिक जनताके श्रद्धास्पद महात्माओं के प्राणान्तसे पूर्व ही भारतीय जनताकी भावनाका आदर कर सरकार सम्पूर्ण रूपसे गोहत्या बन्दीकी घोषणा करे। देशकी जनता और सभी प्रकारके मान्य नेतृत्यवृन्द सरकार पर गोहत्या बन्दीके लिये और भी अधिक प्रभावशाली ढङ्गसे, परन्तु निर्दोष रूपसे दबाव डालें। अन्यथा सरकारके अतिरिक्त समूचे राष्ट्रको इसका कुपरिणाम भोगना पड़ेगा।

—सम्पादक

महाप्रयाण

हम अतिशय दुःखके साथ श्रीभागवत पत्रिकाके पाठक-पाठिकाओंको यह विरह सम्वाद दे रहे हैं कि पिछले २४ अक्टूबर १९६६, एकादशी तिथि सोमवार को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक सुयोग्य प्रचारक एवं श्रीभागवत पत्रिकाके प्रचार-सम्पादक (सहकारी) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त भिक्षु महाराज हम लोगोंको सदाके लिये विरह सागरमें निमज्जित कर स्वधामको महाप्रयाण कर गये।

श्रीमद्भक्ति वेदान्त भिक्षु महाराजका सम्पूर्ण जीवन ही आदर्श सेवामय था। उन्होंने तन-मन-वचनसे अपनेको सर्वरूपेण हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें नियुक्त कर रखा था। विशेषतः श्रीगुरु-गौर-वाणी की सेवाके लिये ही वे जीवित रहे और उसीके लिये अपना जीवन उत्सर्ग भी कर दिये। वे २२ अक्टूबर को श्रीभागवत पत्रिका और यन्त्रस्थ हिन्दी-संस्करण 'जैवधर्म' के कागजकी व्यवस्थाके लिये दिल्ली गये थे और वहाँका कार्य सम्पन्न कर ता० २४-१०-६६ को वहाँसे लौटते समय ४॥ बजे सुबहमें मथुरा जंक्सन पर ट्रेनसे उतर कर यात्री-विश्रामागारमें पहुँच कर अकस्मात् रक्तचापसे हृदयगति बन्द हो जानेसे नित्यधाममें प्रवेश कर गये।

इनका पूर्वाश्रम मथुरामें ही था। पिताका नाम श्रीगणेशीलाल था। संभ्रान्त परिवार था। इनके बचपनका नाम श्रीहरिचन्द्र था। बाल्यकालसे ही सद्धर्म परायण थे। बालकोंकी मण्डली बनाकर हरिकीर्तनकी धुन लगा देते तथा आसपास जहाँ कहीं भी कीर्तन या धार्मिक प्रवचनादि होते, वहां पहुँच जाते। कुछ बड़े होने पर पिताने अल्प शिक्षा देकर ही घरके निजी व्यवसायकी देखरेखके लिए अपने साथ रख लिया। अल्प शिक्षा होने पर भी बड़ी कुशाग्र बुद्धि एवं अध्यवसायी थे। कुछ दिनों के बाद युवावस्थामें माता-पिताने इनके अनिच्छुक होने पर भी इनका विवाह कर दिया। फिर भी इनके हृदयमें संसार त्याग कर सत्संगमें हरिभजन करनेकी पिपासा प्रबलसे प्रबलतर होती गयी। भगवत् कृपासे कुछ ही वर्षोंके पश्चात् उनका स्त्री-वियोग हो गया। अब वे माता-पिता, घर-बार सब कुछ छोड़ कर सत्सङ्गकी खोजमें भारतके विभिन्न तीर्थोंमें घूमने लगे। परन्तु पिपासा शान्त नहीं हुई। ब्रजसे उनकी स्वाभाविक प्रीति थी। अतः ब्रज लौट आये और ब्रजके विभिन्न गाँवोंमें रह कर सद्गुरुकी प्रतीक्षामें त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे।

इसी समय मदीय गुरुपादपद्म श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अनेकों साधु संन्यासी और ब्रह्मचारियों तथा ४०० यात्रियोंके साथ अक्टूबर-नवम्बर १९५४ ई० के (कार्तिक) में ब्रज-मण्डल परिक्रमाके पश्चात् ता० १३-१२-१९५४ का मथुरामें सिविल अस्पतालके सामने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ की स्थापना करके सदल-बल यहीं विराजमान थे। श्रद्धालु श्रोताओं की भीड़ सर्वदा उनको घेरे रहती थी। उन्हीं दिनों एक दिन कहींसे संवाद पाकर हरिचन्द्रजी भी उपस्थित हुए तथा श्रील आचार्यदेवकी मुखनिसृत वीर्यवती हरिकथा का श्रवण कर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने उसी दिन अपनेको श्रील गुरुदेवके अभय चरणोंमें सौंप दिया। वे उसी दिनसे मठमें ही रहकर हरिगुरु वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त हो गये।

कुछ ही दिनोंके उपरान्त श्रील आचार्य देवने उनकी निष्ठा और भजन-पिपासा लक्ष्य कर इनको हरिनाम और दीक्षा देकर उन्हें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी विविध प्रकारकी सेवाका भार अर्पण किया,

तबसे वे एकान्त मनसे श्रीगुरुदेवके आदेशोंका पालन करते रहे। ये सब प्रकारके सेवाकार्योंमें विशेष पटु थे। स्कूली शिक्षा अधिक नहीं होने पर भी प्रखर बुद्धि और कठोर अध्यवसाय एवं सर्वोपरि एकनिष्ठ सेवा-भक्तिके बल पर श्रीगौड़ीय दर्शन एवं उपासना के गहन एवं परमोच्च सिद्धान्तोंको हृदयङ्गम कर लेते तथा उन्हें सहज-सरल एवं रसमयी किन्तु ओजस्वीनी भाषामें श्रोताओंके सम्मुख व्यक्त करके उन्हें मुग्ध कर देते थे। श्रील आचार्यदेवने इनके सेवाकार्योंसे सन्तुष्ट होकर उन्हें 'सेवा-कौस्तुभ' की उपाधि प्रदान कर जून १९६१ में श्रीभागवत पत्रिका का सहकारी प्रचार-सम्पादक नियुक्त किया। तबसे वे भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें श्रीभागवत पत्रिका का प्रचार कर श्रीचैतन्य-वाणीकी सेवा भी करते थे।

श्रील आचार्यदेव इनकी ऐकान्तिक हरि-सेवा-चेष्टा एवं निष्ठा लक्ष्य कर गौराब्द ४७८ (१७ मार्च १९६४ ई०) श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके दिन फाल्गुनी पूर्णिमाको इनको शास्त्रविदित त्रिदण्ड-संन्यास प्रदान किया तथा अष्टोत्तरशतनामी संन्यासी नामोंके अन्तर्गत 'त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त भिक्षु' नाम प्रदान किया।

श्रीपाद भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज एक आदर्श निष्ठासम्पन्न सरल वैष्णव थे। श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवाके लिये अपने प्राणोंकी भी परवाह नहीं करते थे। वे सबके समान प्रिय थे। फिर भी मेरे साथ उनका विशेष बन्धुत्व और प्रीतिभाव था। वे मेरे भजन और गुरु-सेवाके निष्कपट और सच्चे संगी, सहायक और प्रेरणास्थल थे। छोटेसे बड़े-सेवाकार्यों में वे सदैव मेरे साथ रहते थे। वे खड़ी हिन्दी और मधुराति मधुर ब्रजभाषाके अतिरिक्त गुरुमुखी, बंगला आदि भाषाएँ भी जानते थे। वे गौड़ीय-वैष्णव-सिद्धान्तोंका जो अबतक संस्कृत और बङ्गला भाषाके पेटिकाओंमें ही सुरक्षित है—हिन्दी भाषामें प्रचार करनेके लिये बड़े उत्सुक थे। सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें रचित प्रसिद्ध "जैवधर्म" (यन्त्रस्थ) के हिन्दी संस्करणके प्रकाशनके कार्यमें उनका सक्रिय योगदान रहा है। अब शीघ्र ही यह ग्रन्थ श्रद्धालु पाठकोंके सामने प्रकाशित होने जा रहे हैं।

श्रीपाद भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराजके स्वधाम गमनसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने अपने हारका एक देदीप्यमान मणि—सेवा-कौस्तुभ खो दिया है। उनके विच्छेदसे गौड़ीय सम्प्रदायके सभी लोग और विशेषतः हम नगण्य गुरुभ्रातागण उनका अभाव विशेष रूपमें अनुभव कर रहे हैं। उनके विरहमें कातर हम लोगोंको वे अपने गुरु निष्ठा, सेवा-परायणता तथा श्रीगुरु-गौराङ्ग-वाणी-प्रचार—इन आदर्शोंसे अनुप्राणित करते हुए हमें अपनी ही भाँति जीवनकी शेष घड़ियों तक हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा में तत्पर रह कर नाम-भजनमें बल प्रदान करें तथा यह विरहाजंलि ग्रहण करें—यही उनके चरणोंमें कातर प्रार्थना है।

—विरह सन्तप्त सम्पादक

विरह-महोत्सव

गत १७ कार्तिक, ३ नवम्बर १९६६, बृहस्पतिवार कृष्णा पंचमी तिथिको परलोकगत श्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराजका विरहोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सुसम्पन्न हुआ। उक्त दिवस परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें एक विरह सभाका आयोजन किया गया था। उक्त सभामें त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डिस्वामी भक्तिकुशल नारसिंह महाराज तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति प्रकाश अरण्य महाराजके भाषणके पश्चात् श्रील आचार्य देवने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे तथा विरहजनित रूँधे स्वरसे रोते-रोते संक्षेपमें एक विरहपूर्ण भाषण प्रदान किया, जिसे सुनकर सभाके सभी लोग फूट-फूट कर रोने लगे। उस समय वहाँ पर विरह मानों मूर्त्तिमान स्वरूपमें उपस्थित हो गया। श्रील आचार्य देवके भाषणका सार इस प्रकार है—

'अपने सन्तानके विच्छेदमें पिता-माताको कैसा शोक होता है—यह तो मुझे अनुभव नहीं है, क्योंकि बाल-ब्रह्मचारी हूँ; परन्तु शिष्यके लिये कैसी विरह-वेदना होती है—इसका मुझे पूर्ण रूपसे अनुभव है। श्रीमान जगबन्धु, श्रीमान अनंगमोहन तथा श्रीमान गोवर्द्धनके वियोगके पश्चात् यह मेरा चौथा शिष्य-वियोग है। भिक्षु महाराजकी गुरु-निष्ठा अगाध और आदर्श स्थानीय थी। उनकी गुरु-निष्ठा ही उनकी अभीष्ट सिद्धिमें प्रधान सहायक होगी। अन्यान्य सब प्रकारके दोष रहने पर भी अकेली गुरु-निष्ठा ही साधकको परमार्थ राज्यमें प्रवेश दानमें समर्थ है। परन्तु गुरु-निष्ठाके अभावमें समस्त गुण मिल कर भी साधकको परमार्थ राज्यमें पहुँचानेमें समर्थ नहीं होते। अतएव कृष्ण-प्रेमकी प्राप्तिमें गुरु-निष्ठा आधार-शिला है। भिक्षु महाराजमें यह गुरु-निष्ठा थी। वे जीवन भर वाणी-सेवामें नियुक्त रहे और अन्तमें सेवाकी चिन्ता करते-करते, श्रीचैतन्य वाणीकी सेवा करते-करते ही परलोकगमन कर गये। ऐसा जीवन धन्य है। वैष्णवाचार्य मुकुटमणि श्रील भक्ति विनोद ठाकुर द्वारा रचित बंगलाके प्रसिद्ध धर्म ग्रन्थ—'जैवधर्म' को हिन्दी भाषामें प्रकाशित करानेके लिये तथा 'श्रीभागवत'पत्रिका'के लिये कागज की व्यवस्था करनेके लिये वे दिल्ली गये थे और वहाँसे लौट कर कृष्णकी जन्म-स्थली मधुपुरीमें प्रवेश करते ही श्रीमधुसूदन हरिने हरिदासको अपने आलिङ्गनपाशमें आबद्ध करके सदाके लिये अपने पास रख लिया। उनकी सेवा-चेष्टा, गुरुनिष्ठा तथा भजन परायणता सच्चे भजन जिज्ञासुओं तथा गुरु-सेवकोंकी प्रेरणा स्थली रहेगी। सभाके पश्चात् उपस्थित वैष्णवोंको महाप्रसाद सेवन कराया गया।

—प्रकाशक

———

श्रीदामोदर-व्रत और श्रीश्रीअन्नकूट महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीनस्थ सभी मठों में पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी चातुर्मास्य व्रत एवं उसके अन्तर्गत १२ कार्तिक, शनिवारसे लेकर १२ अग्रहायण, सोमवार तक श्रीदामोदर-व्रत नियम सेवाका अनुष्ठान विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ है। दामोदर व्रतके उपलक्ष्यमें सर्वत्र ही एक मास तक विधिपूर्वक बड़े समारोहके साथ श्रीविग्रह सेवा-पूजा-श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन, संकीर्तन और भाषण हुए हैं। इस अनुष्ठानके अन्तर्गत सर्वत्र ही २७ कार्तिक, रविवार को श्रीगोवर्द्धन-पूजा और अन्नकूट महोत्सव तथा ७ अग्रहायण, बुधवार उत्थान एकादशीके दिन श्रीश्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका विरह महोत्सव आदि विशेष समारोह पूर्वक सम्पन्न हुए हैं।

समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें यह महोत्सव श्रील आचार्य देवके निर्देशानुसार श्रीपाद गोराचाँददास बाबाजी और श्रीपाद वृन्दावन विहारीदास ब्रह्मचारी आदिकी देखरेखमें वृहद्रूपमें अनुष्ठित हुआ है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुदेव विराजमान रहनेके कारण इस वर्ष यह व्रतोत्सव अन्यान्य वर्षोंकी अपेक्षा अधिक समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ है। अन्नकूट महोत्सवके अवसर पर आयोजित धर्म सभामें परमाराध्यतम श्रील आचार्य देवने अन्नकूट महोत्सवका महत्व तथा भक्ति तत्त्वके निगूढ़ सिद्धान्तोंपर हिन्दी भाषामें सुन्दर रूपसे प्रकाश डाला। तदन्तर उपस्थित जनसमुदाय को श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीका विविध प्रकार का सुस्वादु महाप्रसाद दिया गया।

श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमा और श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रील आचार्यदेवकी हरिकथा

गत २७ सितम्बरको परमाराध्यतम श्रील आचार्य देवकी अध्यक्षतामें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति की व्रजमण्डल परिक्रमा पार्टी हावड़ा (कलकत्ता) से रेलगाड़ीके संरक्षित शयन कक्षवाले डिब्बेसे यात्रा कर २८ सितम्बरको मथुरा धाममें उपस्थित हुई। मथुरा जंक्सन पर त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डि स्वामी भक्ति वेदान्त भिक्षु महाराज, मठके ब्रह्मचारी गण तथा शहरके अनेक विशिष्ट सज्जन मण्डलीने श्रीश्रीआचार्यदेव और परिक्रमा मण्डलीका माल्यचन्दन आदिके द्वारा अभ्यर्थना की। तदन्तर परिक्रमा पार्टीके साथ श्रील आचार्यदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पधारे।

२९ सितम्बरको विश्वरूप क्षौरके दिन प्रातः कालीन आरति कीर्तन, पाठ और प्रवचनके पश्चात् संन्यासियों और ब्रह्मचारियों आदिका क्षौर-कार्य हुआ। तदनन्तर ३० सितम्बरसे १४ अक्टूबर तक श्रीमथुराकी पंचकोशी परिक्रमा, उसके अन्तर्गत जन्म स्थान, विश्रामघाट आदि, मधुवन, तालवन,

गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड,काम्यवन, नन्दगाँव, बरसाना, सांकेत, जावट, खैर, कदम्बखण्डी, उद्धव-क्यारी, वृन्दावन, श्रीवन, मानसरोवर,गोकुल महा-वन, ब्रह्माण्ड घाट तथा श्रीराधारानीकी आविर्भाव-स्थली रावलका दर्शन एवं परिक्रमा कर १२ अक्टू-बरको पुनः यात्रा पार्टी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें लौटी तथा यहाँ एक दिन विश्राम कर १४ अक्टूबर को यहाँसे यात्रा कर रास्तेमें प्रयाग, वारा-णसी और गया आदि तीर्थ स्थलियोंका दर्शन करते-करते हावड़ा लौट गयी। श्रील आचार्यदेव वन-यात्राके दिनों श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें ही विराजमान थे। उनके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त हरिजन महाराज तथा श्रीहरि साधन ब्रह्मचारी आदिने बड़ी तत्परता और उत्साह से परिक्रमा पार्टीका सुन्दर रूपसे संचालन किया।

परिक्रमा पार्टीके बंगाल लौट जानेके पश्चात् भी श्रीश्रील आचार्यदेव २९ नवम्बर तक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विराजमान रहे। वे जबतक यहाँ विराजमान रहे, तबतक प्रतिदिन शहरके विशिष्ट शिक्षित एवं श्रद्धालु सज्जनमण्डली उनके श्रीमुखार-विन्दसे हरिकथामृत पान करनेके लिये एकत्रित होती थी। इन लोगोंमें श्रीचंचला वल्लभ पंत (अवकाश प्राप्त जिला विद्यालय निरीक्षक) एवं श्रीगजाधर (प्रसाद सक्सेना सेवा योजना अधिकारी) आदिके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। हरिकथाके माध्यमसे श्रील आचार्य देवने विभिन्न दार्शनिक मतवाद, वैष्णव सम्प्रदाय, उनके दार्शनिक सिद्धान्त, मायावाद या केवलाद्वैत-वादकी अकर्मण्यता, शब्दब्रह्मका तात्त्विक विश्ले-षण, स्वयं भगवान कृष्णकी अन्यान्य भगवदवतारों की अपेक्षा वैशिष्ट्य, श्रीकृष्ण और नीति-दुर्नीति तथा विभिन्न उपासना प्रणालियाँ आदि—इन विषयों पर बड़ा ही विस्मयकारी मौलिक सिद्धान्तों का रहस्योद्घाटन किया। उनके ठोस शास्त्र-प्रमाण और अकाट्य युक्तियोंसे सुसज्जित हरिकथा-परि-वेशनकी शैली पर श्रद्धालु श्रोतागण मुग्ध और विस्मित हो पड़ते थे। उनकी कुछ वाणियाँ हरि-कथाएँ तथा कथोपकथन आधुनिक ध्वनि संरक्षण-यंत्रमें (टेप-रेकार्डरमें) संरक्षित हैं। हम उन्हें श्रीभागवत पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित करेंगे।

श्रील आचार्यदेवके मथुरा स्थिति-कालमें बारह श्रद्धालु जनोंने श्रीआचार्यदेवके निकट हरिनाम और दीक्षा-संस्कार आदि प्राप्त किये हैं। तदनन्तर २९ नवम्बरको त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज और श्रीसनत्कुमार ब्रह्मचारीको साथ लेकर मथुरासे यात्रा करके लखनऊमें श्रीपीताम्बर पंतजीके निवास स्थल पर एक दिन हरिकथा कीर्तन करके तथा काशीमें तीन दिन ठहर कर ४ दिसम्बर को श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें पधारे हैं। आजकल वे श्रीधाम नवद्वीप, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें विराजमान हैं।

—प्रकाशक